जुलाई–दिसंबर, 2019

अंक-02

वन अनुसंधान
ई-पत्रिका

वन अनुसंधान संस्थान

डाकघर– न्यू फॉरेस्ट, देहरादून – 248006 (उत्तराखंड), भारत

संरक्षक
अरुण सिंह रावत
निदेशक
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

उप–संरक्षक
नीलिमा शाह
कुलसचिव
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

संपादक मंडल

मुख्य संपादक
डॉ. मौ. यूसुफ
वैज्ञानिक–जी
प्रमुख, वन संरक्षण प्रभाग
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

संपादक एवं समन्वयक
श्री रामबीर सिंह
वैज्ञानिक–डी
विस्तार प्रभाग
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

सहायक संपादक
श्री शंकर शर्मा
सहायक निदेशक (रा.भा.)
हिंदी अनुभाग
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

रचना एवं अभिन्यास
अमोल राऊत
तकनीकीय आर्टीस्ट
वर्गीकरण वनस्पति शाखा
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

प्रकाशन
हिंदी अनुभाग
वन अनुसंधान संस्थान
डाकघर– न्यू फॉरेस्ट, देहरादून – 248006 (उत्तराखंड), भारत

(पत्रिका में व्यक्त तथ्य, आँकड़े और विचार रचनाकारों के अपने हैं, सम्पादक मंडल का इनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।)

निदेशक की कलम से ....

अरुण सिंह रावत
निदेशक
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हो रही है कि 'वन अनुसंधान ई–पत्रिका' के अंक–02 का प्रकाशन किया जा रहा है। यह पत्रिका भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद के संस्थानों एवं केन्द्रों के वैज्ञानिकों तथा अधिकारियों के वानिकी अनुसंधानों का संक्षिप्त संकलन है।

राजभाषा हिंदी में प्रकाशित होने के कारण इसका महत्व न केवल वानिकी के विद्यार्थियों के लिए है अपितु सामान्य जन भी इस से लाभान्वित होंगे।

भारत के परिपेक्ष में आज वानिकी एवं कृषि वानिकी में तीव्रगामी प्रगति की आवश्यकता है। जैसा कि तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या एवं पशु धन की संख्या में हो रही वृद्धि से ईंधन, काष्ठ, चारा, खाद्यान्न, फल, दूध, सब्जी इत्यादि की आपूर्ति के लिए घोर संकट का सामना करना पड़ रहा है, ऐसी परिस्थिति से निपटने के लिए वानिकी एवं विशेष रूप से कृषि वानिकी ही उपरोक्त समस्याओं का समाधान करने में सक्षम है। कृषकों के लिए कृषि वानिकी अपनाना नितांत आवश्यक हैं। इससे रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी तथा वैश्विक ताप वृद्धि में कमी आएगी एवं पर्यावरण में निश्चित रूप से सुधार होगा।

इस संस्थान से प्रकाशित 'वन अनुसंधान ई–पत्रिका' आज के युग में वानिकी शोधों को हिंदी भाषा के माध्यम से आम जनता तक पहुँचाकर उन्हें वानिकी क्षेत्र में रूचि बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगी। यह पत्रिका ऑनलाइन होने के कारण हमें आशा है कि देश के बहुसंख्यक हिंदी भाषी पाठकों तक इसकी पहुँच बढ़ जाएगी।

मैं 'वन अनुसंधान ई–पत्रिका' से जुड़े सभी सदस्यों को हार्दिक बधाई देता हूँ तथा पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

अरुण सिंह रावत
निदेशक

कुलसचिव की कलम से ....

नीलिमा शाह
कुलसचिव
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

अत्यंत हर्ष की बात है कि 'वन अनुसंधान ई–पत्रिका' का प्रकाशन किया जा रहा है जिसमें वानिकी से संबंधित अनुसंधान की जानकारियाँ राजभाषा हिंदी के माध्यम से प्रकाशित की जा रही हैं।

वानिकी से संबंधित अनुसंधान गतिविधियाँ भारत के हिंदी भाषी लोगों तक सुगमतापूर्वक इस पत्रिका के माध्यम से पहुँच रही हैं जो अत्यंत महत्वपूर्ण बात है।

हिंदी देश की राजभाषा है तथा देश के अधिकांश लोगों द्वारा सशक्त संपर्क सूत्र के रूप में प्रयोग की जाती है। आज के वैज्ञानिक युग में वैज्ञानिक शोधों का लाभ विद्यार्थियों एवं जनमानस तक व्यापक रूप में पहुँचाने हेतु हिंदी ही उचित माध्यम है।

विश्व के सर्वाधिक वन क्षेत्र वाले देशों के आँकड़े बताते हैं कि भारत इन सर्वाधिक वन क्षेत्र वाले दस देशों में से एक है लेकिन इसके बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था में वनों का योगदान काफी कम है।

आर्थिक लाभ के अलावा वन संसाधन हमें बहुत सी प्राकृतिक सुविधाएं प्रदान करते हैं जिनके लिए हम कोई मूल्य प्रदान नहीं करते हैं तथा इसीलिए इन्हें गणना में नहीं रखते। ये वर्तमान परिदृश्य में जनजातियों और स्थानीय लोगों के जीवन, पर्यावरणीय सुरक्षा, संसाधन संरक्षण और विविध सामाजिक, राजनैतिक सरोकारों से जुड़े हुए हैं। इसी कारण भारत में वानिकी को एक संवेदनशील और रोचक अध्ययन क्षेत्र के रूप में भी देखा जा रहा है।

भारत में वानिकी के महत्व को ध्यान में रखते हुए वानिकी के ज्ञान को हिंदी भाषा से विस्तारित करते हुए वैज्ञानिक शोधों को धरातल पर सहज रूप से उतारने का प्रयास 'वन अनुसंधान ई–पत्रिका' करेगी। मैं पत्रिका को प्रकाशित करने के प्रयासों की सफलता की कामना करती हूँ।

नीलिमा

नीलिमा शाह
कुलसचिव

मुख्य संपादक की कलम से ....

डॉ॰ मौ. यूसुफ, वैज्ञानिक–जी
प्रमुख, वन संरक्षण प्रभाग
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून की हिंदी पत्रिका 'वन अनुसंधान ई–पत्रिका' के अंक–02 का प्रकाशन कर, आप पाठक गणों को सौंपते हुए मुझे अपार प्रसन्नता हो रही है। जैसा कि इस पत्रिका के इस अंक में वानिकी एवं कृषि वानिकी से जुड़े रूचिकर तथा पर्यावरण एवं कृषि की दृष्टि से बहुउपयोगी विषयों को सम्मिलित किया गया है, अतः मुझे विश्वास है, कि यह अंक विशेषकर वानिकी एवं कृषि के प्रबुद्ध पाठकों हेतु रूचिकर एवं लाभकारी होगा।

इस अंक के लेखों में "*कैरीलिया ब्रैचियाटा* : स्वच्छ जलीय मैंग्रोव प्रजाति" शीर्षक लेख में कच्छीय वनस्पतियों का विवरण दिया गया है। इसके साथ ही मणिपुर में झूम खेती के बेहतर विकल्प पर अगले लेख में जानकारी दी गई है। इस लेख में बताया गया है कि पूर्वोत्तर क्षेत्रों में झूम भूमि की उर्वरता किस प्रकार बिगड़ रही है और इसके बेहतर विकल्प के रूप में *पार्किया टिमोरियाना* किस प्रकार से रोपण किया जा सकता है। "वर्मी कॉम्पोस्ट (केंचुआ खाद) भूमि के लिए वरदान" लेख में केंचुओं पर दी गई विस्तृत जानकारी, देश के प्रत्येक किसान वर्ग के लिए बहुत ही लाभप्रद साबित होगी। आँवला बहुपयोगी फल है जिसे अनेक प्रकार से औषधियों के रूप में प्रयोग करते हैं। परती भूमि में आँवला उत्पादन कर इस भूमि को उपयोगी बनाए जाने संबंधी लेख "परती भूमि में आँवले की खेती" महत्वपूर्ण है। आज के युग में वानिकी के विस्तार के महत्व को देखते हुए कुछ प्रजातियों का जैविक नियंत्रण में सहायक "*कोक्सीनेल्लिड बीटिलस्*" पर लेख पाठकों के लिए दिलचस्प होगा।

वर्तमान समय में कृषि वानिकी के लिए एक बेहतर विकल्प के रूप में "कदम" की भूमिका को लेख में प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही कुछ लेख जिनकी वर्तमान समय में महत्वपूर्ण भूमिका हैं, जैसे कि "उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र में यूकेलिप्टस कृषि वानिकी", "लार्वा परजीव्याभ *अपैन्टेलिस* प्रजातियों की जैविक नियंत्रण में भूमिका", "पलाश के वृक्षों पर रंगीनी लाख कीट पालन की विधि", "इन्सर्टिड परजीव्याभ जैविक नियंत्रण का एक विकल्प" आदि की उपयोगिता को ध्यान में रखकर इस अंक में प्रकाशित किए गए हैं।

इस अंक में प्रकाशित लेखों को जन–जन तक पहुँचाने के लिए सरल रूप में मातृभाषा हिंदी ही सर्वोत्तम विकल्प है। विश्वास है कि इस अंक से पाठकवर्ग अधिकाधिक लाभान्वित होंगे।

डॉ0 मौ. यूसुफ़

वन अनुसंधान ई–पत्रिका
जुलाई–दिसंबर, 2019

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
	निदेशक की कलम से		
	कुलसचिव की कलम से		
	मुख्य संपादक की कलम से		

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1	*कैरीलिया ब्रैचियाटा*: स्वच्छ जलीय मैंग्रोव प्रजाति	डॉ॰ प्रवीण कुमार वर्मा, डॉ॰ अनुप चन्द्रा एवं रंजना नेगी	1
2	मणिपुर में बढ़ती झूम खेती द्वारा हो रही मृदा–क्षरण के सुधार के लिए *पार्किया टिमोरियाना* एक बेहतर विकल्प	डॉ॰ मनीष कुमार सिंह एवं शंकर साव	2-4
3	कृषि वानिकी के लिए एक उपयुक्त प्रजाति–कदम	डॉ॰ चरण सिंह एवं अजय गुलाटी	5-8
4	परती भूमि में आँवले की खेती	रामबीर सिंह एवं अनुभा श्रीवास्तव	9-11
5	उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र में यूकेलिप्टस कृषि वानिकी	अनुभा श्रीवास्तव, अनीता तोमर, आलोक यादव एवं एस डी शुक्ला	12-14
6	वर्मी कम्पोस्ट (केंचुआ खाद) भूमि के लिए वरदान	वेदपाल सिंह	15-17
7	कोक्सीनेल्लिड बीटिलस् की प्रमुख प्रजातियाँ तथा उनका वानिकी में जैविक नियंत्रण में महत्वपूर्ण योगदान	अखिलेश कुमार मिश्रा एवं डॉ॰ मौ॰ यूसुफ	18-22
8	इन्सर्टिड परजीव्याभ जैविक नियंत्रण का एक विकल्प	मनेन्द्र कनेरिया एवं डॉ॰ सुधीर सिंह	23-24
9	पलाश के वृक्षों पर रंगीनी लाख कीट पालन की विधि	डॉ॰ अरविंद कुमार	25-27
10	लार्वा परजीव्याभ *अपैन्टेलिस* प्रजातियों की जैविक नियंत्रण में भूमिका	नेहा रजवार, डॉ॰ मौ यूसुफ एवं डॉ॰ मोहसिन इकराम	28-29

कैरीलिया ब्रैचियाटाः स्वच्छ जलीय मैंग्रोव प्रजाति

डॉ॰ प्रवीण कुमार वर्मा, वैज्ञानिक–सी, डॉ॰ अनूप चंद्रा, वैज्ञानिक–ई एंव रंजना नेगी, वैज्ञानिक–डी
वन वनस्पति प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

मैंग्रोव, पादप जगत के ऐसे पेड़ पौधे होते हैं, जो समुद्र से लगे तटीय क्षेत्रों में पाए जाते हैं जहां का पानी खारा होता हैं एवं इनका प्रसार उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों तक फैला हैं। इन मैंग्रोव वनस्पतियों को कच्छीय वनस्पतियां भी कहते हैं। विश्व में मैंग्रोव की तकरीबन 110 प्रजातियाँ पायी जाती हैं एवं भारत में दुनिया के कुछ प्रसिद्ध मैंग्रोव भी पाये जाते हैं, जिनमें सुन्दरवन विश्व का सबसे बड़ा मैंग्रोव क्षेत्र है। जिसका कुछ भाग भारत में तथा कुछ बांग्लादेश में है। मैंग्रोव प्रजातियों के बीजों का अंकुरण एवं विकास पेड़ पर लगे–लगे ही हो जाता है एवं एक समय उपरांत या समुद्र के ज्वार के समय यह अंकुरित पादप पानी के बहाव से टूटकर जमीन पर गिर जाते हैं और पानी के साथ काफी दूर तक चले जाते हैं एवं दलदलीय भूमि में प्रस्फुटित हो जाते हैं। इनकी पत्तियाँ अन्य पौधों से मोटी होती हैं जो वाष्पोत्सर्जन द्वारा पानी के उत्सर्जन को रोकती हैं। अगर मैंग्रोव की पारिस्थितिकी की बात करें तो यह विशेष जीव–तंत्र की रचना करते हैं यह वन तटों को स्थिरता भी प्रदान करते हैं एवं साथ में और विभिन्न प्रकार के प्राणियों, मछलियों और पंछियों की जातियों को सुरक्षा एवं उन्हें वासस्थान भी प्रदान करते हैं; खास कर पेड़ पशु पक्षियों को तेज धूप से बचाने के लिए भी योगदान देते हैं।

•इसके अतिरिक्त मैंग्रोव की कुछ प्रजातियाँ खारे पानी के अलावा स्वच्छ पानी में भी पायी जाती हैं इनमें से एक हैं ***कैरीलिया ब्रैचियाटा***, जो पादप जगत के राईजोफोरेसी परिवार की स्वच्छ जल के दलदलों (swamp) में पायी जाने वाली मैंग्रोव की प्रजाति है जहां पानी वर्ष भर मौजूद रहता है। ***कैरीलिया ब्रैचियाटा*** की लंबाई 15.20 मीटर तक होती है। इसकी लकड़ी का उपयोग मकान, फर्नीचर, मकानों की फर्श, संगीत वाद्य यंत्र आदि बनाने हेतु उपयोग किया जाता है क्योंकि इसकी कीट प्रतिरोधी क्षमता होती है। इसकी जड़ें प्रदूषित पानी को साफ करने की क्षमता रखती हैं। कर्नाटक के कुछ क्षेत्रों में इसके बीज से निकलने वाला तेल खाद्य–तेल के रूप में इस्तेमाल होता है। कुछ देशों में इसकी छाल का उपयोग विषाक्तता एवं कटे घाव के भरने के इलाज में भी किया जाता है, जबकि आस्ट्रेलिया में इसकी पत्तियों का इस्तेमाल चाय जैसे पेय पदार्थ के रूप में किया जाता है। तटवर्ती क्षेत्रों में इसका इस्तेमाल किनारे के वृक्षारोपण में किया जाता है।

कैरीलिया ब्रैचियाटा की पत्तियां सरल, चमकदार, एवं विपरीत दिशा (opposite) में होती है। इसके पुष्प क्रीम रंग के होते हैं एवं फल पकने पर नारंगी एवं लाल रंग के हो जाते हैं। मैंग्रोव प्रजाति होने की वजह से इसके बीज का अंकुरण पेड़ में लगे–लगे ही हो जाता है। विश्व में यह आस्ट्रेलिया, प्रशांत महासागरीय द्वीप समूहों, दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों से लेकर भारतीय उपमहाद्वीप तक पाया जाता है। भारत में इसका प्रसार प्रायद्वीपीय भारत, अंडमान–निकोबार द्वीप समूह, पूर्वोतर भारत के असम एवं पश्चिमी बंगाल तक है।

कैरीलिया ब्रैचियाटाः चित्र-1. पेड़, चित्र–2. जड़ें, चित्र–3. पत्तियां, चित्र–4. पुष्प गुच्छ

ताजे पानी में पायी जाने वाली यह प्रजाति आश्चर्यजनक रूप से उत्तरी हिमालयी राज्य उत्तराखंड के गढ़वाल एवं कुमाऊं के मैदानी क्षेत्रों में बहुत ही कम संख्या में पाई जाती है, जो उत्तराखंड की पादप विविधिता को अद्भुत बनाती है। पहला क्षेत्र देहरादून के निकट नकरौंदा स्वच्छ जल दलदली क्षेत्र (swamp) एवं दूसरा उधमसिंह नगर के पूर्वी तराई के खटीमा वन क्षेत्र के स्वच्छ जल दलदलों में पाया जाता है। इनकी कम संख्या को देखते हुए इसके उत्तराखंड में संरक्षण की बहुत आवश्यकता है। क्योंकि तेजी से घटते जा रहे उत्तराखंड के दलदली परिस्थितिकी तंत्रों को बचाये रखने के लिए इस प्रजाति को बचाना बहुत आवश्यक है।

डॉ॰ प्रवीण कुमार वर्मा
वैज्ञानिक–सी

मणिपुर मे बढ़ती झूम खेती द्वारा हो रही मृदा–क्षरण के सुधार के लिए पार्किआ टिमोरियाना एक बेहतर विकल्प

डॉ॰ मनीष कुमार सिंह, वैज्ञानिक–डी एवं शंकर साव, कनिष्ठ अनुवादक
वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट 785001 (असम)

झूम खेती, कृषि की एक प्राचीन पद्धति है, जिसकी खेती पूर्वोत्तर हिमालयी क्षेत्र के कई हिस्सों में की जा रही है। हाल के दिनों में, बढ़ी हुई आबादी की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए झूम खेती के तहत अधिक भूमि की मांग बढ़ी है। चूंकि भूमि संसाधन सीमित हैं, परित्यक्त झूम भूखंडों की परती अवधि को 1 से 3 वर्ष तक कम करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं था। इस कम अवधि की उपलब्धता की वजह से भूमि फिर से पुर्नस्थापित नहीं हो पाती है, जिस वजह से क्षेत्र में भूमि क्षरण और वनों की कटाई की समस्याओं को और बल मिलता है। झूम भूमि का इस प्रकार क्षरण होना पूर्वोत्तर हिमालयी क्षेत्र के कई हिस्सों में विशेष रूप से मणिपुर की घाटियों में गंभीर चिंता का विषय है। इस प्रकार, जन्मजात जीवाणु जैव–इनोक्युलेंट सहित *पार्किया टिमोरियाना* जैसे बहुउद्देशीय वृक्ष की शुरूआत, पौधों के विकास, भूमि की उत्पादकता तथा अंततः क्षेत्र की जैव विविधता की स्थिति को बढ़ाने के लिए एक अच्छा विकल्प है।

भारत का हिमालय क्षेत्र दुनिया के वृहद विविधिता वाले क्षेत्रों में से एक है। यह भौतिक रूप से पूर्वी हिमालय, पूर्वोत्तर पहाड़ियों (पटकाई–नागा हिल्स और लुशाई हिल्स) और ब्रह्मपुत्र तथा बराक घाटी मैदानों में वर्गीकृत है (दास और कलिता, 2016)। भारत–म्यांमार, भारत–चीनी और भारतीय बायोग्राफिकल स्थानों के संगम पर स्थित पूर्वोत्तर क्षेत्र आवासों की प्रचुरता प्रदान करने में अद्वितीय है, जिसमें उच्च स्तर के स्थानिक के साथ विविध जीवधारी भी हैं। यह क्षेत्र 200 से अधिक नृजातीय समुदायों का घर है और दुनिया के अग्रणी संरक्षण एजेंसियों के लिए प्राथमिकता पर रहा है (चटर्जी आदि, 2006)। शिफ्टिंग कल्टीवेशन या झूम खेती एक पारंपरिक भूमि उपयोग प्रणाली है, जो यहां सदियों से प्रचलित है। इस क्षेत्र में खेती योग्य क्षेत्र (62.04) का उपयोग प्रतिशत, राष्ट्रीय औसत (73.05) से कम है। पहले यह झूम पद्धति 15–20 साल तक भूमि परित्याग के बाद दो से तीन वर्षों के लिए प्रचलित थी, ताकि भूमि अपनी उर्वरता और जैव विविधता वापस पाने में समर्थ हो (वर्मा आदि, 2017)। हालांकि, मौजूदा मांग परिदृश्य, परती अवधि का समय 1–3 साल तक कम कर देती है जो भूमि क्षरण और सीमित उत्पादन की समस्याओं को बढ़ा देती है। झूम भूमि का यह क्षरण, पूर्वोत्तर हिमालयी क्षेत्र के कई हिस्सों में, विशेष रूप से मणिपुर की घाटियों में, गंभीर चिंता का विषय है। मणिपुर में घाटी के जिलों में, राज्य के भौगोलिक क्षेत्र का दसवां हिस्सा शामिल है, जहां झूम खेती होती है। खेती की इस पद्धति के तहत वार्षिक रूप से 90,000 हेक्टेयर भूमि आती हैं (तोमर आदि, 2012)। भूमि और वनों के संसाधनों पर यह दबाव समय के साथ बढ़ता गया, जिससे पोषक तत्वों की कमी हो गई और पर्यावरण की दृष्टि से झूम भूमि ख़राब हो रही है। इस प्रकार, क्षरित झूम भूमि की भौतिक–रासायनिक गुणों में सुधार करने और झूम निर्भर कृषकों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को बढ़ाने के अलावा इस क्षेत्र की जैव विविधता की स्थिति को बढ़ाने के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण के लिए सोचने का यह सही समय है।

पार्किआ टिमोरियाना जो कि तेजी से विकसित होने वाली फलीनुमा प्रजाति है जो उच्च आर्थिक महत्व के फल देती है, क्षरित झूम भूमि के पुनर्ग्रहण के लिए उपयुक्त प्रजातियों में से एक हो सकती है। इस वृक्ष की देखभाल की बहुत अधिक आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि एक फलदार वृक्ष होने के कारण यह नाइट्रोजन यौगिकीकरण के माध्यम से मिट्टी को समृद्ध करता है। इसके अलावा, वृक्ष के प्रकंद में पाए जाने वाले माइक्रोफ्लोरा संभवतः पौधे की वृद्धि और विकास को बढ़ाते हैं और अपने खोए हुए पोषक तत्वों को वापस पाने के लिए परती झूम की सहायता करता है (चित्र–1)। *पी. टिमोरियाना* जो 'ट्री बीन' के नाम से लोकप्रिय है, भारत के उत्तर–पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर उगता है और दक्षिण पूर्व एशियाई देशों जैसे बर्मा, बांग्लादेश, थाईलैंड और मलेशियाई क्षेत्र (हुकर, 1879, हॉपकिंस, 1994) तक फैला है। यह सामान्यतः भारत के पूर्वोत्तर राज्यों जैसे मिजोरम, नागालैंड, मणिपुर, मेघालय और असम में प्रत्येक घर के आंगन, खेती और जंगलों में उगता है (कांजीलाल आदि

1938)।

यह पेड़ काफी ठंडे पहाड़ी क्षेत्रों से लेकर गर्म मैदानों तक (थांगजम, 2014) तथा विभिन्न ऊँचाई वाले क्षेत्रों यानी 40 से 820 एमए.एस.एल तक विविध कृषि–जलवायु क्षेत्रों में बढ़ने के लिए अनुकूल है। (रॉबर्ट आदि, 2003) यह एक मध्यम आकार का वृक्ष है जिसकी ऊँचाई 15–25 मीटर होती है तथा छाल भूरे रंग की होती है। (सिंह और सिंह, 2017) पत्तियां 18–42 सेंटीमीटर लंबी प्राथमिक पुष्पक्रम के साथ बारी–बारी से होती हैं, जिसमें डंठल शामिल होते हैं जो 14–31 जोड़े विपरीत या उप विपरीत क्रम में व्यवस्थित होते हैं। पेडुनेल्स को बारी–बारी से सामान्यतः 4–7 प्रति कंपाउंड इनफ्लोरोसीन्स में व्यवस्थित होता है। फूल 9–10.5 मिमी लंबे बाह्यदलपुंज जिसमें सिउडो पेडीकेल, कोरोला 10–11 मिमी लंबे और बाह्यदलपुंज से परे 2–3.5 मिमी एक्जर्टेड फिलामेंट्स विरूद्ध गुण वाले होते हैं। फूल, सितंबर से अक्तूबर तक दिखाई देते हैं और एंथेसिस से लगभग चार महीनों में एक तने के आकार के फल के रूप में विकसित होते हैं और फरवरी से मार्च के दौरान फसल कटाई के लिए उपलब्ध होती है। पौधों में फली का उत्पादन 6 वर्ष की आयु में शुरू होता है, हालांकि पूर्ण धारण अवस्था 10 वर्ष की होती है। अनुकूल मौसम के दौरान एक पूर्ण विकसित पौधा 10,000–15,000 फली धारण करता है। इस प्रकार, एक एकल पौधा, उत्पादनकर्ता को प्रति वर्ष लगभग 8,000 से 10,000 रु. की उपज दे सकता है (रॉकी आदि 2004)।

पूर्वोत्तर भारत में इसे 100–120 रुपये/किग्रा॰ के बाजार मूल्य वाली सबसे महँगी सब्जी मानी जाती है। इसके अलावा, इसकी लकड़ी का उपयोग बक्से, सजावटी सामान (कुमार आदि, 2012) और हल्के फर्नीचर बनाने के लिए किया जाता है। इसकी छाल में 6–15% टैनिन होता है जो टैनिन उद्योग में उपयोगी है और लकड़ी को पेपर पल्प के स्रोत के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है (अज्ञात,1966)। पार्किया, चाय के बागानों (ध्यानी और चौहान, 1990) और किसानों के लिए भी एक छायादार वृक्ष के रूप में उपयोगी है (अलाबी आदि 2005)। एथनो–बॉटानीकल रूप से *पी. टिमोरियाना* के बीज और फली पेट के विकारों को ठीक करने और यकृत के कार्यों को नियंत्रित करने में उपयोग किए जाते हैं। पानी में उगाई गई फली का उपयोग चेहरे और सिर धोने के लिए किया जाता है (रॉय आदि, 2016)। छाल और पत्तियों का उपयोग त्वचा रोगों और अल्सर के लिए लोशन बनाने में किया जाता है। फरमेंटेड पत्ती का काढ़ा गठिया प्रभावित भागों के लिए फायदेमंद है (शर्मा आदि, 1993)। इसके अतिरिक्त, पेड़ की फलियों को अलग–अलग फायदेमंद बैक्टीरिया जैसे *स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस, पी. हिबिस्कोकोला, पी. पुतिदा, पी. एरुगिनोसा, बैसिलस सबटिलिस, बी. ब्रूब्रेविस, बी. सेरियस, एग्रोबैक्टीरियम फेब्रम, सेरेलिया मार्सेकेन्स* आदि इसके प्रकंद क्षेत्र में पाया गया है। जन्मजात जीवाणु जैव–इनोक्युलेंट की तैयारी के लिए इन बैक्टीरिया की संख्या को आगे जांचा जा सकता है, जिसका उपयोग नए प्लांटलेट की स्थापना और विकास तथा क्षेत्र के क्षरित झूम में सुधार के लिए किया जा सकता है।

चित्र-1- मणिपुर में झूम फैलो की ईको–बहाली के लिए *पार्किया टिमोरियाना* प्लांटलेट्स का प्रयोग।

इस लेख में इस बात पर जोर दिया गया है कि वृक्ष की फलियों से तेजी से विकसित होने वाली फलदार (लेग्युमिनस) वृक्ष प्रजाति पूर्वोत्तर हिमालयी क्षेत्र में पोषण, औषधियों और मनोरंजक मूल्यों का एक लोकप्रिय गैर–पारंपरिक स्रोत है। यह मृदा नाइट्रोजन का एक उत्कृष्ट आपूर्तिकर्ता है और कार्बन सिंक के रूप में कार्य करता है, इसकी व्यापक अनुकूलन और मृदा अपरदन की जांच करने की क्षमता का उपयोग, मणिपुर की क्षरित झूम भूमि के सुधार हेतु एक उपाय के रूप में किया जा सकता है। इसके अलावा, जन्मजात जैव इनोक्युलंट्स सहित इस बहुउद्देशीय वृक्ष की फलियां महत्वपूर्ण रूप से वृद्धि, पौधों की उत्तरजीविता, मिट्टी की पोषक स्थिति और क्षेत्र की जैव विविधता को बढ़ा सकती है। इस प्रकार, उच्च वाणिज्यिक और पारिस्थितिक महत्व होने के कारण, ये सभी राज्य, इस प्रजाति के वृक्षारोपण को बड़े पैमाने पर प्राथमिकता दे सकते हैं।

संदर्भ

1. अलाबी, डी0ए0, एकिंनसुलायर, ओ0आर0; सोनियालू, एम0ए0 2005., क्वान्टीटेटिव डिटर्मिनेशन ऑफ कैमिकल एण्ड न्यूट्रीशनल कम्पोजीशन आफ *पर्कियाबी ग्लोबोसा* (जैक) बैंथ. अफ्रीकन जरनल ऑफ बायोटेक्नोलोजी, 4:812–815.

2. एनोनिमस, 1966. वैल्थ ऑफ इण्डिया–रॉ मैटीरियल, एन0पी0 काउन्सिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इन्डस्ट्रीयल रिसर्च, नई दिल्ली, VIII :265.

3. चटर्जी एस0, साइकिया, ए0 दत्ता, पी0 घोष, डी0, पैगिंग, जी0 गोस्वामी, ए0के0. 2006. बैकग्राउण्ड पेपर ऑन बायोडाइवर्सिटी सिग्नीफिकेन्स ऑफ नार्थ ईस्ट इण्डिया फोरेस्ट कन्जर्वेशन प्रोग्राम/डब्लू डब्लू एफ–इण्डिया, नई दिल्ली।

4. दास, एच0, कलिता, डी0 2016. फाइबर एण्ड डाई यील्डिंग प्लान्टस ऑफ नोर्थ–ईस्ट इण्डिया। इन बायोप्रोस्पेक्टिंग ऑफ इन्डीजीनस बायोरिसोर्सेस ऑफ नार्थ–ईस्ट इन्डिया (सम्पादकःपुरकायस्थ जे), स्प्रिंगर साइंस+ ब्यूजिनेस मीडिया, सिंगापुर।

5. ध्यानी एस0के0, चौहान डी0 एस0 1990. नाइट्रोजन फिक्सिंग ट्रीज फार एग्रोफोरेस्ट्री इन मेघालय। इन्डियन जरनल ऑफ हिल फार्मिंग, 3 (2):65–68.

6. होल्टम आर0 ई0 1940. ऑन पीरियोडिक लीफ चैंज एण्ड फ्लावरिंग ऑफ ट्रीज इन सिंगापुर, II. गार्डन्स बूलेटिन, 11:119–175.

7. हूकर जे0 डी0 1879. दा फलोरा ऑफ ब्रिटिश इन्डिया, मिजोरी बोटेनिकल गार्डन, लन्दन 2:279–290.

8. होफ्किंस एच0सी0ए0फ0 1994. दा इन्डो–पेसिफिक स्पीसीज ऑफ पार्किया (*लेगुमिनेसीः माइमोसाइडी*), कीव बूलेटिन, 49:181–234.

9. कांजीलाल यू0एन0, कांजीलाल पी0सी0, दास ए0 1938. फ्लोरा ऑफ असम, प्रबासी प्रेस, कोलकाता, II:151.

10. कुमार आर0, अश्वनी टी0, बोराह, आर0के0 2012. आइडेन्टीफिकेशन एण्ड कन्ट्रोलिंग वर्टिसीलियम विल्ट इन्फेक्टिंग *पार्किया रोक्सबर्गी* सीडलिंग इन मणीपुर, इन्डिया, रिसर्च जरनल ऑफ फोरेस्ट्री. 1–6.

11. रोबर्ट टी0, दमयन्ती एम0, शर्मा जी0जे0 2003. डिटेक्शन ऑफ जैनेटिक डाइवर्सिटी इन *पार्किया टिमोरियाना* (डी0 सी0) मुरे यूजिंग रेन्डमली एम्पलीफाइड पोली मोर्फिक डी0एन0ए0 एनालिसिस. फूड एग्रिक एनवायरन 1(3&4): 46-49.

12. रॉकी पी0, साहू यू0के0, थापा एच0एस0 2004. लाइवलीहुड जैनेरेशन थ्रौ ट्री बीन (*पार्किया रोक्सबर्गाई* जी0 डोन0) इन इंफाल वैस्ट डिस्ट्रिक्ट ऑफ मणीपुर, जरनल ऑफ नोन टिम्बर फोरेस्ट प्रोडक्टस, 11:135–139.

13. राय एस0एस0, राजलक्ष्मी ए0, अजीतकुमार एस0एन0, 2016. ट्री बीन (*पार्किया रोक्सबर्गाई*) : ए0 पोटेन्शियल मल्टीपरपज ट्री लैग्यूम ऑफ नार्थ ईस्ट इण्डिया–इन नेशनल सिम्पोजियम ऑन वैजिटेबिल लैग्यूमस फॉर सुवायल एण्ड ह्यूमन हैल्थ, 201–208.

14. शर्मा बी0डी0, होरे डी0के0, सलाम जे0एस0, 1993. *पार्किया रोक्सबर्गाई* : ए यूजफुल ट्री ऑफ नार्थ ईस्टर्न इन्डिया. इन्डियन जरनल ऑफ प्लॉट जैनेटिक रिसोर्सेस, 6:171–173

15. सिंह एन0टी0, सिंह के0एन0 2017. रिविजिटिंग इम्पोर्टेड योंगचकःएन ओवरव्यू ग्लोबल एकेडिमिक रिसर्च जर्नल, 5(1) : 24–28

16. थंगजाम आर0, 2014. इन्टर–सिम्पल सिक्वेंश रिपीट (आई0एस0एस0आर0) मार्कर एनालिसिस इन *पार्किया टिमोरियाना* (डी0 सी0) मुरे. पापुलेशन फ्राम नार्थईस्ट इण्डिया. एप्लाइड बायोकेम बायोटेक्नोलोजी, 172:1727–1734.

17. तोमर जे0एम0एस0, दास ए0, पुनी एल0, चर्तुवेदी ओ0पी0, मुण्डा जी0सी0. 2012. सिफ्टिंग कल्टीवेशन इन नार्थईर्स्टन रीजन ऑफ इण्डिया–स्टेट्स एण्ड स्ट्रेटजीज फॉर सस्टेनीबल डेवेलपमेन्ट. इण्डियन फॉरेस्टर. 138 (1). 52–62

18. वर्मा पी0के0, कुमार वी0, चन्द्रा ए0, थांगजाम, बी0. 2017. अल्टरनेटिवस ऑफ सिफ्टिंग कल्टीवेशन इन नार्थ–ईस्टर्न रीजन ऑफ इण्डिया. रिपोर्ट ऑफ ओपीनियन. 9(12) : 1–8

डॉ० मनीष कुमार सिंह
वैज्ञानिक–डी

कृषि वानिकी के लिए एक उपयुक्त प्रजाति – कदम

डॉ॰ चरन सिहं, वैज्ञानिक–ई एंव अजय गुलाटी, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
विस्तार प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण भोजन, चारा जलाऊ लकड़ी की मांग भी लगातार बढ़ रही है जिससे कृषि भूमि तथा जंगलों पर दबाव बढ़ता जा रहा है। इस बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए कृषि योग्य भूमि में विस्तार करना है जो कि गैर उपजाऊ भूमि को उपजाऊ भूमि में बदल कर सम्भव हो सकता है या फिर सीमित कृषि भूमि में ही अधिक पैदावार प्राप्त करके ही सम्भव है। गैर उपजाऊ भूमि का उपजाऊ बनाना एक लम्बी प्रक्रिया होने के कारण वर्षों का समय लगेगा, इसलिए सीमित उपलब्ध कृषि भूमि में पैदावार बढ़ाकर ही भोजन, चारा तथा लकड़ी की मांग को पूरा किया जा सकता है। उपजाऊ तथा गैर उपजाऊ भूमि से अधिक पैदावार लेने के लिए कृषि वानिकी एक अच्छा एवं कारगर विकल्प है लेकिन इस पद्धति में कम समय में पैदावार देने वाली तथा कृषि फसलों के साथ भूमि की कुल पैदावार को बढ़ाने वाली वृक्ष प्रजातियों की आवश्यकता है। इसलिए आजकल कृषि वानिकी के तहत तेजी से बढ़ने वाले, विदेशी उत्पत्ति वाली वृक्ष प्रजातियों का अधिक प्रचलन है, जिसके अन्तर्गत किसान देश के उत्तरी–पश्चिमी क्षेत्रों जिनमें हरियाणा, पंजाब, पश्चिम उत्तर प्रदेश तथा उत्तराखण्ड राज्य शामिल हैं, विशेषतः पॉपलर, यूकेलिप्टस आदि को अपने खेतों में लगाते हैं।

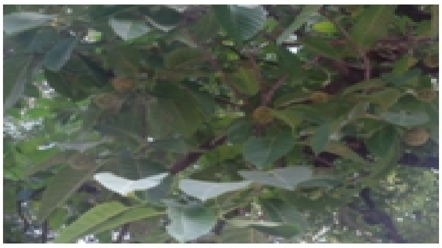

(चित्र–1ः कदम)

(चित्र–2ः फल आच्छादित कदम)

आज–कल के किसान पॉपलर तथा यूकेलिप्टस के अलावा अन्य वृक्ष प्रजातियों जैसे मीलिया डूबिया, कदम, गम्हार, आँवला, चन्दन को भी अपने खेतों में लगाने लगे हैं। विदेशी उत्पत्ति की प्रजातियों को लगाने वाले किसान अब दूसरी प्रजातियों जिनमें कदम, गम्हार, सागौन, मीलिया आदि की ओर रुख करने लगे हैं क्योंकि विदेशी मूल की प्रजातियों में कीट पतंगों तथा रोगों की समस्याएं अधिक देखने को मिल रही हैं तथा ये प्रजातियाँ बहु–उपयोगी भी नहीं हैं।

हमारे देश में पाई जाने वाली वृक्ष प्रजाति *एन्थीसिफेलस कदम्बा* जिसे कदम के नाम से जाना जाता है तथा इसको भगवान कृष्ण के नाम से जोड़कर भी देखा जाता है, यह एक तेजी से बढ़ने वाली प्रजाति है। यह प्रजाति कृषि वानिकी के तहत लगाई जाने वाली प्रजाति है जो काफी तेजी से बढ़ती है साथ ही यह पर्णपाती भी है, जिससे फसलों को भरपूर सूर्य का प्रकाश मिलता है तथा पैदावार अधिक होती है। कदम वृहद आकार का उष्ण कटिबन्धीय वृक्ष है। इसका क्षत्रक खुला हुआ, तना गोल लगभग 15 मीटर लम्बा होता है। यह वृक्ष *रूबियेसी* परिवार के अन्तर्गत आता है। अनुकूल परिस्थितियों में वृक्ष की लम्बाई 20 मीटर व तने की लम्बाई 9 मीटर या उससे अधिक हो जाती है। एक प्रौढ़ वृक्ष की मोटाई 120 से.मी. से लेकर 150 से.मी. तक हो सकती है। तने की छाल प्रारम्भिक रूप से चिकनी, समतल तथा बाद में गहरी एवं हल्की दरारों युक्त हो जाती है। फूल छोटे तथा गुलाबी रंग के होते हैं। पंखुड़ियां सूचाकार तथा गेंद के आकार में लगी रहती है, जिससे पुष्प गोल आकार के दिखते हैं। फूलों का आकार 2.5 से 5 से.मी. होता है फल गोल, गुलाबी रंग तथा कोणीय बीजों से भरे होते हैं। वृक्षों पर फूल मई से जुलाई तक रहते हैं तथा इसके बाद फल लगकर अगस्त से अक्तूबर तक पक जाते हैं तथा जनवरी से फरवरी के मध्य जमीन पर गिर जाते हैं।

भौगोलिक विवरण

कदम प्राकृतिक रूप से दक्षिण व दक्षिण–पूर्व एशिया, भारत, भारत–मलाया क्षेत्र, जावा, सुमात्रा, चीन, इण्डोनेशिया, मलेशिया, बंगलादेश, श्रीलंका, कम्बोडिया, गुआइना, फिलीपिन्स तथा सिंगापुर में पाया जाता है। भारत में यह प्रजाति उप–हिमालय क्षेत्र में नेपाल की तरफ के पूर्वी क्षेत्र से पश्चिमी बंगाल तथा असम तक पाई जाती है। देश के दूसरे भागों में जैसे बिहार, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश तथा कर्नाटक से लेकर केरल के सदाबहार जंगलों में भी यह प्रजाति पाई जाती है। अरूणाचल प्रदेश में कृषि वानिकी के अन्तर्गत यह प्रजाति काफी प्रचलित है। उत्तराखण्ड राज्य में हल्द्वानी के वन क्षेत्र में नमी वाले स्थानों पर भी इस प्रजाति की उपस्थिति दर्ज की गई है। कदम तेजी से बढ़ने वाली प्रजाति के साथ–साथ अनेक प्रकार की मिट्टी विशेष तौर पर दोमट तथा बलुई के अनुकूल होने के कारण कृषि वानिकी के लिए उपयुक्त मानी गई है साथ ही यह कृषि फसलों पर भी विपरीत प्रभाव नहीं डालती।

उपयोग

काष्ठ आधारित औद्योगिक इकाईयों के लिए कदम की लकड़ी को उपयुक्त पाया गया है तथा इन इकाइयों में कदम की काफी मांग रहती है। कदम की लकड़ी हल्के पीले या सफेद रंग की होती है तथा वजन में हल्की होती है। इसकी लकड़ी को परिरक्षियों द्वारा आसानी से उपचारित किया जा सकता है। यह मध्यम रूप से कठोर हाती है। इस पर छिलाई तथा सफाई का कार्य बड़ी ही आसानी से किया जा सकता है। कदम की लकड़ी का उपयोग छत की तख्तियों, हल्के निर्माण कार्यों, प्लाई–वुड, पेसिंल, दियासलाई की तीली, काष्ठ–फर्श, कागज की लुग्दी, पैकिंग बॉक्स, खिलौने, जूतों के फर्मे, चाय के बर्तन आदि बनाने में किया जाता है। कदम को सजावट के तौर पर सड़कों के किनारे भी लगाया जाता है। इसकी पत्तियों, फूलों तथा फलों में औषधीय गुण पाये जाते हैं। कदम की छाल का उपयोग पीले रंग के प्राकृतिक रंजक बनाने में किया जाता है। बीजों में विषरोधी गुण पाए जाते हैं।

कदम में स्वाभाविक रूप से तेजी से पत्ती–विलगन (पतझड़) के गुण पाये जाते हैं जिससे इसकी पत्तियाँ अधिक मात्रा में गिरने के कारण भूमि में खाद की मात्रा बढ़ जाती है तथा भूमि की उर्वरकता शक्ति बढ़ती है। इसके पत्ते कथित तौर पर पशुओं को चारे के रूप में खिलाए जाते हैं। इसके पुष्पों में एक विशेष प्रकार की सुगन्ध होती है जो कि मधुमक्खियों को आकर्षित करती है इस प्रक्रिया में परागण में भी सहायता मिलती है तथा मधुमक्खियों को भी अपना भोजन मिल जाता है। वस्तुतः कदम सूरज की रोशनी में पनपने वाली प्रजाति है लेकिन तरूण एवं छोटी अवस्था के पादपों को सूर्य की तीव्र रोशनी से हानि पहुँचती है।

जलवायु

कदम प्रायः 37^{0} से. 47^{0}से. के अधिकतम तथा 0^{0} से. 15^{0} से. के तापमान पर पनपने वाली प्रजाति है। नर्सरी में उगाये गये तरूण पौधे पाले के प्रति काफी संवेदनशील होते हैं तथा अधिक नमी में इनमें जड़ तथा तना गलने की बीमारी लग जाती है। सामान्यतः यह प्रजाति 1500 से 5000 मि0मी0 वाले वर्षा क्षेत्र में सुगमता से पैदा हो जाती है। परन्तु कभी–कभी यह मरूस्थलीय जलवायु तथा 200 मि0मी0 वर्षा वाले क्षेत्रों में भी पाई जाती है। भौगोलिक ऊँचाई के दृष्टिकोण से यह प्रजाति 300 मीटर से लेकर 1000 मीटर तक पाई जाती है लेकिन 1400 मीटर की ऊँचाई तक भी इसको उगाया जा सकता है।

उपयुक्त भूमि

कदम के पेड़ हरी, भुरभुरी तथा पानी के समुचित निकास युक्त दोमट मिटट्ी में अच्छी तरह फलते फूलते हैं। इसके अतिरिक्त यह बलुई मिटटी में भी भली प्रकार उगाये जा सकते हैं। मृदा संरक्षण में भी कदम का महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि यह मिट्टी में कार्बन की मात्रा को बढ़ाता है।

कदम के छोटे पौधों को अधिकतकर पशुओं तथा जंगली शाकाहारी जानवरों द्वारा कुतर कर खाया जाता है जिससे इनकी गुणवत्ता प्रभावित होती है। इनमें कुतरे हुए स्थानों से कल्ले भी निकल आते हैं जो कि बढ़कर शाखाओं का रूप ले लेते हैं। अनुकूल वातावरण में, कदम प्राकृतिक रूप से प्रजनित होता है। लेकिन इसके बीज बहुत ही सूक्ष्म होते हैं जिसके कारण अकुरित तथा बिना अंकुरण वाले बीज मिट्टी के ढेर में दब जाते हैं जिससे अंकुरण कठिन हो जाता है इसलिए इसके बीजों को कृत्रिम रूप से उगाना ही सुविधाजनक माना गया है।

नर्सरी निर्माण

इसके फल हल्के बादामी–गुलाबी रंग के होते हैं तथा अगस्त–सितम्बर में पक जाते हैं जिन्हें बीज प्राप्ति हेतु भूमि से इकटठा कर ढेरियों के रूप में छाया में रख दिया जाता है। बीज एकत्रीकरण का उचित समय मध्य अगस्त माह माना गया है। फलों के गूदे को 2–4 दिन सड़ने के लिए छोड़ दिया जाता है इसके बाद जब गूदा लुग्दी में परिवर्तित हो जाता है तो उसे पानी से धोकर अलग कर दिया जाता है तथा बीजों को सुखा लिया जाता है। बीजों को अलग करने के लिए फलों की लुग्दी को पानी मिला कर 0.50 मि.मी. छिद्रों वाली छलनी से छाना जाता है। कदम के एक फल से 400–500 मिली ग्राम बीजों की प्राप्ति होती है। बीज काफी बारीक तथा अनियमित आकार के होते हैं तथा इनकी संख्या 9,00,000 से 27,00,000 प्रति किलो ग्राम होती है।

कदम के बीजों को बिजाई के पूर्व किसी तरह के उपचार की आवश्यकता नहीं पड़ती है लेकिन प्रारम्भिक सिंचाई करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि बीज अंकुरण पूर्व पानी के साथ न बहें। बीजों को जमीन के स्तर से 10 से 15 सेमी ऊपर उठी सतह पर भुरभरी मिट्टी में बिखेर कर बोया जाता है। जिसमें प्रति वर्ग मीटर लगभग 125 ग्राम बीजों की आवश्यकता होती है। तत्पश्चात एक हल्की सिंचाई की जाती है। बुवाई के 15 दिन पश्चात ही लगभग 15 प्रतिशत बीजों में अकुरंण हो जाता है। लगभग 10 सेमी के आकार के पौधें को थैलियों में लगा दिया जाता है तथा मानसून आने तक थैलियों में ही रहने दिया जाता है।

वृक्षारोपण

वृक्षारोपण के अन्तर्गत 5 माह के पौधों का उपयोग किया जाता है इनका रोपण जून–जुलाई के महीने में मानसून के मौसम में किया जाता है। रोपण के लिए 30 से 40 सेमी. आकार के पौधे उपयुक्त होते हैं। कृषि वानिकी के अन्तर्गत पौधों को 3.5 मीटर से लेकर 8.50 मीटर तक की दूरी पर लगाया जाता है। जिससे नीचे उगने वाली कृषि फसलों को उचित मात्रा में सूर्य का प्रकाश मिलता रहे।

जैसा कि ज्ञातव्य है कि कदम बहुत ही तेजी से बढ़ने वाली प्रजाति है। पूर्व में किये गये अध्ययनों में पाया गया है कि यह प्रजाति 4 साल में 13 सेमी. का व्यास तथा 9 मीटर की ऊँचाई प्राप्त कर लेती है। प्रारम्भिक सालों में इसके पौधे तेजी से बढ़ते हैं। तथा 6 या 8 साल तक ऊँचाई में 3 मीटर प्रति वर्ष की बढ़ोत्तरी देखने को मिलती है। कदम का कटान आमतौर पर 10 से 15 वर्ष के बीच किया जाता है कदम के तने का व्यास 50 सेमी. तक हो जाता है जो कि समुचित कार्बन संग्रहण को दर्शाता है।

रखरखाव

कदम के पौधों को भेड़, बकरियों, गायों तथा जंगली शाकाहारी जीवों से हमेशा नुकसान होता है इसके पौधों की उचित देखभाल की आवश्यकता होती है कुछ कीट–पतंगें भी पौधों को नुकसान पहुँचाते हैं इनमें *एरिस्टोबिया सप्रोनसीमिटर* (छाल भक्षक), *डिहामस सेर्विनस* (तना भेदक) तथा *डिराडसे एडजूटेरिया* (निष्कपत्रक) मुख्य हैं।

फसल चक्र

कदम नम व समशीतोष्ण जलवायु में कृषि वानिकी के अन्तर्गत एक उपयोगी तथा लाभप्रद प्रजाति है। इसकी पैदावार औद्योगिक इकाइयों की हल्की लकड़ी की आपूर्ति के लिए की जाती है। कदम के वृक्षों की छटाई की आवश्कता नहीं पड़ती क्योकिं शाखाएँ तथा पत्तियाँ ही सूख कर गिर जाती हैं। वृक्षों का कटान चक्र इसके उपयोग पर निर्भर करता है। लुग्दी तथा माचिस की तीलियाँ बनाने के लिए कदम को 4 से 5 साल में काटा जा सकता है लेकिन इसके लिए पेड़ों में समुचित मात्रा में खाद डालना चाहिए। लकड़ी–उत्पादन के लिए पेड़ों को 10 वर्ष की उम्र में काटा जाता है।

पैदावार व लाभ

एक अध्ययन में अनुमानित रूप से बताया गया है कि कदम पोपुलस डेल्टोइडिस तथा सागौन से, संयुक्त रूप से लगभग 16,400 टन/प्रति वर्ष कार्बन का संचय होता है। एक अध्ययन में यह भी पाया गया है कि पतझड़ के दौरान कदम की पत्तियों का हल्दी की पैदावार पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता तथा रबी व खरीफ की फसलें भी आसानी से हो जाती हैं। कदम तथा हल्दी आधारित अध्ययन में पाया गया है कि 6 माह में हल्दी का उत्पादन 7 से 12 टन प्रति हैक्टेयर तथा 8 माह में 10 से 16 टन प्रति हैक्टेयर होता है।

शरद तथा बसन्त ऋतु में बड़ी मात्रा में पतझड़ होने के कारण, कदम के साथ गेहूँ तथा धान की खेती आसान तथा लाभकारी है। कदम आसानी से कृषि वानिकी पद्धति में समाहित होने वाली प्रजाति है तथा आय उपार्जन का एक

अच्छा साधन है। पतझड़ होने के कारण कदम के साथ गेहूँ, धान, चाय तथा कॉफी बगानों में कदम को छाया प्रदान करने वाले वृक्षों के रूप में उगाया जाता है। कदम उप उष्ण कटिबन्धीय से लेकर समशीतोष्ण जलवायु वाले भारत के अधिकतर भागों में कृषि वानिकी के अन्तर्गत उगाया जा सकता है। कदम को नदियों तथा नहरों के किनारे भी स्थापित किया जा सकता है इसके अतिरिक्त इसे सड़क, रेलवे के किनारे भी लगाया जा सकता है। कदम की लकड़ी की पैंसिल उद्योग, प्लाई वुड तथा माचिस की तीली निर्माण उद्योगों में हमेशा मांग रहती है।

कदम की महत्ता को देखते हुए यह कृषि वानिकी के अन्तर्गत भारत के कई राज्यों में उगाया जा रहा है। इनमें बिहार राज्य मुख्य रूप से शामिल है। भारतीय वन प्रजनन एवं वृक्ष प्रवर्धन संस्थान कोयम्बटूर (तमिलनाडू) के द्वारा किये गये आर्थिक मूल्यांकन के अनुसार 8 साल के कदम की ऊँचाई 10 मीटर तथा मोटाई 100 सेमी हो जाती है तथा इससे 11 घन फुट लकड़ी प्राप्त होती है। एक घन फुट लकड़ी का औसतन मूल्य रू0 250/– आंका गया है जो कि रू0 2750/– प्रति वृक्ष हो जाता है। यदि एक हैक्टेयर में 400 वृक्ष पनपकर लकड़ी देते हैं तो रू0 11 लाख प्रति हैक्टेयर हो जाती है तथा शुद्ध लाभ रू0 9000/– प्रति माह, केवल कदम के पेड़ों से होता है तथा इस प्रकार कृषि फसलों से कमाई अतिरिक्त होती है।

इस प्रकार कह सकते हैं कि कदम कृषि वानिकी के लिए एक उपयुक्त एवं लाभकारी प्रजाति है। इसे लगाकर किसानों की आय में निश्चित रूप से बढ़ोत्तरी की जा सकती है जो कि आज की ज्वलन्त मांग है। साथ ही इसको नये क्षेत्रों में स्थापित करने की भी आवश्यकता है इसके लिए इस प्रजाति पर काफी अनुसंधान की आवश्यकता है जिससे इसकी वानिकी के सभी पहलुओं को जानना आवश्यक है।

संदर्भ

1. अरविंद बिजालवान, मनमोहन जे0आर0, डोब्बयाल, भारतीय जे0के0 (2014) ए पोटेन्शियल फास्ट ग्रोविंग ट्री फॉर एग्रो फॉरेस्टी एण्ड कार्बन सीक्विस्टेशन इन इण्डिया: *एन्थोसिफेलस कदम्बा* (*रोक्सबर्गाई*) अमेरिकन जे0 एग्रोफॉरेस्टी एण्ड फॉरेस्टी 2 (6) : 296–301

2. लुना, आर0के0 (1996) प्लांटेशन ट्रीज.1 बीडी प्रकाशक, देहरादून, भारत.

3. कदम्ब भा.वा.अ.शि.प. प्रकाशन.

डॉ॰ चरन सिंह
वैज्ञानिक–ई

परती भूमि में आँवले की खेती

रामबीर सिंह, वैज्ञानिक–डी एवं अनुभा श्रीवास्तव, वैज्ञानिक–सी*
विस्तार प्रभाग, व.अ.सं., देहरादून ; * पारि–पुर्नस्थापन वन अनुसंधान केंद्र, प्रयागराज

हमारे देश का कुल भौगोलिक क्षेत्र (329 मिलियन हैक्टेयर) का लगभग 50 प्रतिशत क्षेत्र परती भूमि (अकृषि, बंजर, क्षारीय, लवणीय, अम्लीय, अनुपजाऊ एवं कृषि योग्य भूमि आदि) के अंतर्गत है जिसका पर्यावरण, बढ़ती जनसंख्या (मांग), औषधियाँ, तथा खाद्यान्न उत्पादन की दृष्टि से विकास करना अत्यन्त आवश्यक है। देश की उपजाऊ भूमि की उर्वरा शक्ति मानव जन्य कारकों से दिन–प्रतिदिन घटती जा रही है। वर्तमान में लगभग 231 मिलियन टन खाद्यान्न उत्पादन मात्र 144 मिलियन हैक्टेयर उपजाऊ भूमि से किया जा रहा है। जिस पर लगभग 110 करोड़ जनमानव खाद्य पूर्ति हेतु आश्रित हैं। इस बढ़ती हुई जन व पशु संख्या के लिए तथा सीमित होती हुई कृषि योग्य भूमि में आज नहीं तो कल खाद्यान्न, औषधियाँ, पशुचारा व ईंधन उपलब्ध करना कठिन हो जायेगा।

चित्रः आँवले की खेती

मृदा उत्पादकता में कमी एवं बेकार भूमि का होना एक गंभीर समस्या है। जो कि पानी व हवा क्षरण, वनों के आवरण को हटाना, वनभूमि का अधिग्रहण तथा अत्याधिक मानवीय हस्तक्षेप इसके प्रमुख कारण हैं। जिससे वनों पर खाद्यान्न, औषधियाँ, पशुचारा व ईंधन के लिए अत्यधिक बोझ पड़ रहा हैं। बोहरा (1985) के अनुसार भारत में लगभग 12 मिलियन टन मृदा प्रति वर्ष बह कर नष्ट हो जाती हैं। विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार भारत के कुल 329 मिलियन हैक्टेयर भौगोलिक क्षेत्रफल में से 167 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र किसी न किसी प्रकार की अधोगति से प्रभावित हैं ।

जल क्षरण – 30.3 प्रतिशत

वायु क्षरण – 16.8 प्रतिशत

क्षारीय व लवणीय – 2.4 प्रतिशत

अर्थात् करीब 50 प्रतिशत भूमि अधोगति को प्राप्त हुई हैं। इसी प्रकार प्रति वर्ष करीब 2.1 हैक्टेयर भूमि वृक्ष विहीन होकर अधोगति को प्राप्त हो रही हैं। परती भूमि विकास उत्पादन समिति (NWDB) ने 120 मिलियन हैक्टेयर परती भूमि दर्शायी है। जिसमें 40 मिलियन हैक्टेयर जंगल वाले भाग में एवं 80 मिलियन हैक्टेयर कृषि क्षेत्र में है। यदि ह्रास इसी गति से आगे भी होता रहा या इसके प्रबंधन में कोई सकारात्मक परिवर्तन न किये गये तो भविष्य में खाद्यान्न, औषधियाँ, फल, ईंधन, काष्ठ एवं पशुचारे आदि की गम्भीर समस्याऐं उत्पन्न हो सकती हैं ।

संसाधनों के अनुचित इस्तेमाल से इन मृदाओं की उत्पादकता प्रभावित होकर परती भूमि का रूप ले रही हैं। यदि ह्रास इसी गति से होता रहा तो आने वाले दिनों में कई क्षेत्रों में अकाल भी पड़ सकता है। इस परती भूमि के सुधार व उचित उपयोग के लिए आँवला आधारित कृषि वानिकी ही उपयुक्त विकल्प हो सकता है। कृषि वानिकी पद्धतियों से मृदाओं की भौतिक व रासायनिक दशा में सुधार लाकर परती भूमि को कृषि योग्य भूमि में बदला जा सकता हैं। तथा आँवलों की खेती कर उपयोग में लाया जा सकता है।

आँवला *(Emblica officinalis)* की खेती:

आँवले का वैज्ञानिक नाम *Emblica officinalis* है तथा इसे *Phyllanthus emblica* के नाम से भी जाना जाता है। यह *Phyllanthaceae family* का पौधा है।

विवरण: आँवले का वृक्ष सम्पूर्ण भारत में शुष्क और अति शुष्क अवस्थाओं को छोड़कर सभी जगह पाया जाता हैं। यह वृक्ष छोटे या मझोले आकार का 5.6 मी. ऊँचा होता है। इसकी छाल चिकनी व धूमिल होती है। पत्तियाँ पंखदार, हल्की हरी, पर्णपाती होती हैं। पुष्प हरे, पीले, झुण्ड में जो कि पत्तियाँ वाली उप शाखाओं में नीचे खाली भाग में लगे होते हैं। फल गोलाकार तथा गुठली 6 घाटियों वाले तीन भागों में विभक्त होती हैं। जिसमें दो बीज होते हैं।

प्राप्त स्थान: आँवला भारत में लगभग सभी जगह पाया जाता है। यह जंगलों में अधिकतर पाया जाता है। तथा हिमालय से श्रीलंका एवं मलक्का से दक्षिणी चीन तक इसकी खेती की जाती है। यह भारत में प्रचलित है। तथा इसकी उत्तर प्रदेश में औद्योगिक खेती भी की जाती है। मुख्यतः यह उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जिले की ऊसर भूमि एवं आजमगढ़, प्रतापगढ़, बनारस तथा बरेली जिलों के लगभग 200 हैक्टेयर बगीचों में भी पाये जातें है। देश के कुछ अन्य भागों तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश में भी इसकी औद्योगिक खेती की जाती है।

औषधीय उपयोग: आँवले का उपयोग, मुरब्बा, चटनी, जैम, अचार, सीरप आदि पदार्थ तैयार करने में होता है। आँवला च्यवनप्राश और त्रिफला नामक आयुर्वेदिक औषधीयों का प्रमुख घटक है। प्राचीन ग्रंथों में इसे शिवा तथा धात्री कहा गया है। जंगली आँवला, औषधी के रूप में अधिक लाभदायी पाया गया है। इसकी पत्तियों को पशु आहार के रूप में भी उपयोग किया जाता है। आँवला पित्तज्वर, स्मृति, क्षय, अतिसार, अजीर्ण, मूत्ररोग, और रक्त प्रदर के उपचार में भी उपयोग किया जाता है।

मुख्य रासायनिक अव्यव: इसकी पत्तियों में खनिज प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। पत्तियों में राख 4.48, कैल्सियम 1.93,, कार्बन 47.99 और नाइट्रोजन 1.94 प्रतिशत पाई जाती है। आँवला में विटामिन सी प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। यह विटामिन सी का मुख्य स्रोत होता है।

कृषि तकनीक

भूमि एवं जलवायु: यह गर्म जलवायु का वृक्ष है। इस पर लू या पाले का कोई प्रभाव नहीं होता है इसे पूर्ण प्रकाश आवश्यक होता है। यह सभी प्रकार की भूमि में उगाया जा सकता है। परती भूमि, अम्लीय से क्षारीय या सोडियम युक्त भूमि जिसका पी एच़ 5.5 से 8.5 तक में भी पनप सकता है। लेकिन मृदा अच्छी तरह से ड्रेन हो जहाँ पानी न भरता हो उपयुक्त रहती है।

प्रजातियाँ: इसकी प्रमुख प्रजातियाँ बनारसी चकईया फ्रासिंस, कृष्णा, कंचन तथा नरेन्द्र आँवला हैं, नरेन्द्र आँवला की कई श्रेणी नरेन्द्र आँवला 5, नरेन्द्र आँवला 6, 7, 8, 9, 10 तक किस्में हैं।

गड्ढो की तैयारी: पौधा रोपण के लगभग एक माह पूर्व गड्ढो को 45 × 45 × 45 सेंटीमीटर के बराबर खोदना चाहिए। तथा उसमें मिट्टी के बराबर–बराबर गोबर खाद व रेत तथा कुछ कीटनाशक दवाई मिलाना चाहिए।

रोपण का समय: इसका रोपण जुलाई से मध्य सितम्बर या फरवरी से मार्च तक होता है।

वृक्षारोपण की विधि: आँवला के 50–70 से.मी. लम्बे व 1 से 2 वर्ष आयु के पौधों को कतार में या मेड़ पर लगाया जाता है। पौधें मेड़ पर लगाने के लिए 4 × 4 मी. या 5 ×5 मी. की दूरी पर लगाया जा सकता हैं तथा फसल के साथ में लगाने पर पौधों से पौधों की दूरी कम से कम 5 × 5 मी. या 6 × 4 मी. रखनी चाहिए ।

पौधें.

1.) बीज द्वारा:– अ) कतार में छिड़कांव की पद्धति से

ब) डिबलिंग पद्धति से। एवं

2) ग्राफ्टिंग द्वारा :– अ) प्रताप गढ़ (उ. प्र.) ब) वन विभाग की नर्सरी तथा स) सामाजिक वानिकी विभाग से भी प्राप्त कर सकते है।

फसल के पकने का समय: आँवला के 3 से 4 वर्ष में फल निकलने लगते हैं तथा दिसम्बर से जनवरी में यह अच्छी तरह से पकता है। जिसमें अच्छे गुण होते हैं।

उपज: उत्पादन की दृष्टि से आँवला 5 से 6 वर्ष में फल देने लगता है। आँवला की पैदावार लगभग 50–60 किलो प्रतिवृक्ष प्रति वर्ष होती है। एक हैक्टेयर में इसकी उपज लगभग 20.22 टन तक हो सकती है।

लागत: आँवला लगाने के प्रथम 3 वर्ष में पौधा रोपणी कार्य, सिंचाई, निराई व रखरखाव आदि के लिए लगभग रू0

50,000 / हैक्टेयर खर्चा होता है।

आयः आँवला की लगभग 20 टन उपज से आय रू0 10 प्रति किलो औसत दर से रू0 2,00,000 प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष तक हो सकती है।

शुद्ध लाभः आँवला से रू0 1,50,000 प्रति हैक्टेयर प्रतिवर्ष, लगभग 8 से 10 वर्षों तक शुद्ध लाभ ले सकते हैं।

इस प्रकार विभिन्न परती भूमियों में कुछ बहुउद्देशीय प्रजातियाँ लगाकर कृषि वानिकी के अन्तर्गत आँवला को उगाकर उपयोग में लाया एवं सुधारा जा सकता है। तथा देश में इस बढ़ती हुई खाद्यान्न, पशुचारा, ईंधन एवं औषधियों की मांग की भी पूर्ति की जा सकती है। तथा आने वाले इस संकट से बचा जा सकता है।

सन्दर्भः

1. वोहरा बी0बी0 (1985) लैण्ड एण्ड वाटरः टुवार्डस ए पॉलिसी फॉर लाइफ–सपोर्ट सिस्टमस (अंक.2) इनटेक, इण्डियन नेशनल ट्रस्ट फॉर आर्ट एण्ड कल्चर हैरीटेज

रामबीर सिंह
वैज्ञानिक–डी

लेखकों के लिए नियम–निर्देशः

•वन अनुसंधान ई–पत्रिका के आगामी अंकों के प्रकाशन हेतु वानिकी से संबंधित अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएं ई–मेल **hindiofficer@icfre.org** पते पर भेजने का कष्ट करें।

•रचनाएं यथासंभव टाइप की हुई हों, रचनाकार का पूरा नाम, पद एवं संपर्क विवरण का उल्लेख अपेक्षित है।

•लेखों में शामिल छायाचित्र तथा आँकड़ों से संबंधित आरेख स्पष्ट होने चाहिए।

•वन अनुसंधान ई–पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में निहित विचारों के लिए संपादक मंडल अथवा हिंदी अनुभाग उत्तरदायी नहीं होगा और इसके लिए पूरी की पूरी जिम्मेदारी स्वयं लेखक की ही होगी।

•प्रयुक्त भाषा सरल, स्पष्ट एवं सुवाच्य हिंदी भाषा हो।

स–आभार
संपादक मंडल

उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र में यूकेलिप्टस कृषि वानिकी

अनुभा श्रीवास्तव, वैज्ञानिक–सी, अनीता तोमर, वैज्ञानिक–ई
आलोक यादव, वैज्ञानिक–ई एवं एस डी शुक्ला, तकनीकी अधिकारी
पारि–पुनर्स्थापन वन अनुसंधान केंद्र, प्रयागराज

परिचय

उत्तर प्रदेश का वर्तमान वन तथा वृक्ष क्षेत्रफल मात्र 9.18 प्रतिशत है, जबकि वन नीति के अनुसार भू – भाग का 33.0 प्रतिशत क्षेत्र वन/वृक्ष से आच्छादित होना चाहिए। वर्तमान दशा में कृषि वानिकी ही इच्छित वन क्षेत्र प्राप्त करने का एक मात्र विकल्प है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में कृषि वानिकी का स्तर पश्चिमी क्षेत्र की तुलना में प्रारम्भिक स्थिति में है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के कृषि जलवायु क्षेत्रों में तराई तथा विंध्य क्षेत्रों में प्राकृतिक वन सम्पदा पूर्वी मैदानी क्षेत्र की तुलना में अच्छी स्थिति में है। वर्तमान में पूर्वी क्षेत्र के अधिकतर जिलों का वन क्षेत्र लगभग 1–2 प्रतिशत के मध्य है जबकि कुछ जिलों में 1.0 प्रतिशत से भी कम है। यूकेलिप्टस, पॉपलर, शीशम, सागौन, बबूल, आँवला, बेर, खैर, शहतूत आदि पूर्वी उत्तर प्रदेश में कृषि वानिकी की मुख्य प्रजातियाँ हैं। इसके अतिरिक्त आम, नीम, महुआ, जामुन, पीपल, बरगद, पलाश आदि प्रजातियाँ बाग बगीचों, घर के आस – पास या गाँव की अतिरिक्त भूमि पर पायी जाती हैं।

क्षेत्र विशेष में आर्थिक लाभ के कारण यूकेलिप्टस किसानों की स्थापित प्रजाति है। यह प्राकृतिक रूप से आस्ट्रेलिया में पाई जाती है यह तेजी से बढ़ने वाली सीधे तने व हल्के छत्र वाली प्रजाति है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी मैदानी क्षेत्र में यूकेलिप्टस आधारित कृषि वानिकी प्रदर्शन मॉडलों का विकास कर नवीन कृषि तकनीकी के प्रचार प्रसार द्वारा क्षेत्र विशेष में कृषि वानिकी का सतत् विकास किया जा सकता है। यूकेलिप्टस की लकड़ी की बाजार में बहुत मांग है। यह लकड़ी प्लाइवुड, ईंधन तथा कागज बनाने के लिए लुगदी तैयार करने के काम आती है। इसकी लकड़ी फर्नीचर, पैकिंग पेटियाँ, बल्ली तथा बिजली के खंभे व बाड़ लगाने के काम भी आती है।

कृषि वानिकी में यूकेलिप्टस

यूकेलिप्टस के वृक्ष सीमान्त कृषक खेत की मेड़ों पर तथा लघु और विकसित किसान खेत में ब्लाक रोपण कर तैयार किए जा सकतें हैं। पारम्परिक तथा अन्य फसलों के साथ भी वृक्ष तथा फसल की वृद्धि नगण्य रूप से प्रभावित होती है। सामान्य बीज से तैयार पौधे 7–8 वर्ष में तथा क्लोनल पौधे 5–6 वर्ष में तैयार हो जाते हैं। यूकेलिप्टस प्रजाति के उन्नत किस्म के पौधों का चयन पूर्वी उत्तर प्रदेश के कृषकों हेतु एक चुनौती है। कुछ कृषकों को यूकेलिप्टस के क्लोन पौधों के विषय में जानकारी है किन्तु क्षेत्र विशेष हेतु उपयुक्त क्लोन का चयन उनके लिये कठिन है।

चित्र–1 एवं 2 :
यूकेलिप्टस का ब्लाक तथा मेड़ रोपण

कृषकों हेतु कृषिवानिकी के विभिन्न चरण

1 भूमि के क्षेत्रफल के आधार पर प्रजातियों का चयन

2 मृदा परीक्षण

3 कृषि वानिकी उत्पाद के बिक्री के अवसर

4 उत्तम गुणवत्ता के पौधे प्राप्त करना

5 पौधा रोपण तथा रख रखाव के सम्बन्ध में तकनीकी जानकारी

6 उत्पाद का निष्कर्षण तथा बाजार में बिक्री

पौधरोपण

यूकेलिप्टस के पौध खेतों की मेड़ों में 2–3 मीटर की दूरी पर लगाने चाहिए। खेतों की मेड़ों पर पौधारोपण की दिशा पूर्व पश्चिम हो ताकि सर्दियों में रबी की फसल पर लगातार छाया न पड़े। बंजर अथवा कम उपजाऊ वाली भूमि पर यूकेलिप्टस का सघन वृक्षारोपण 2 मी. × 2.5 मी. के अंतराल पर किया जाता है। कतारों के मध्य दो वर्ष तक खेती की जा सकती है कम उपजाऊ भूमि पर भी अच्छा लाभ मिलता है। यूकेलिप्टस 46 डिग्री सेल्सियस तापमान तक व 20 से 125 सेमी0 तक वार्षिक वर्षा वाले स्थानों में उग सकता है। गहरी परत वाली नम मिट्टी व 6.5 से 7.5 पी.एच. तक की मिट्टी यूकेलिप्टस लगाने के लिए उत्तम होती है। हल्के जल भराव वाले क्षेत्रों में भी यूकेलिप्टस उगाया जा सकता है ।

यूकेलिप्टस की यूकेलिप्टस टैरिटिकारनिस, यूकेलिप्टस कमल्डुलेन्सिस तथा यूकेलिप्टस संकर प्रजातियाँ प्रदेश की जलवायु के अनुकूल पाई गई हैं। सफेदा लगाने का सर्वोत्तम समय मानसून आगमन पर जुलाई व अगस्त माह है। सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो तो इसे सितंबर से फरवरी तक भी लगाया जा सकता है। सफेदा लगाने के लिए गड्ढों का आकार 60 से.मी. × 60 से.मी. × 60 से.मी. रखते हैं। गड्ढे के ऊपरी आधी मिट्टी में बराबर मात्रा में गोबर की गली–सड़ी खाद मिला लें तथा सिंचाई कर दें। इन गड्ढों में 25 मि.ली. क्लोरोपाइरीफोस पानी में मिलाकर प्रति गड्ढा डालें। सघन पौधरोपण करना हो तो पौधे से पौधे तथा लाइन से लाइन का फासला तीन मीटर रखकर पौध लगाएं। नालियों व सड़कों, रास्तों के किनारे पौधे से पौधे की दूरी तीन मीटर रखें। पहले दो साल तक पौधों की ठीक से देखभाल करें।

पहले दो वर्षों तक निराई–गुड़ाई करते रहें। जुलाई–अगस्त में लगाए गए पौधों में 20 ग्राम यूरिया प्रति पौधा पानी लगाने से पहले पौधरोपण के एक माह बाद डालें। दूसरे साल 50 ग्राम, तीसरे साल 100 ग्राम प्रति पौधा दें। चौथे, पांचवें, छठे साल में भी 100 ग्राम यूरिया डालने से पौधे अच्छे बढ़ते हैं। यदि पौधे सितंबर से फरवरी में लगाते हैं तो पहली बार खाद अगली जुलाई में देना चाहिए।

सामान्य बीज से तैयार पौधें 7–8 वर्ष में तथा क्लोनल पौधें 5–6 वर्ष में तैयार हो जाते हैं। सफेदा की वृद्धि आठवें वर्ष तक ही होती है। 8–9 वर्ष बाद कटाई करा लें। बल्लियों के लिए कटाई तीन साल बाद भी कर सकते हैं। सफेदे की उपज पेड़ों की आपसी दूरी, सिंचाई, उर्वरक तथा किस्मों पर निर्भर करती है। 7–8 वर्ष के पेड़ से 4–5 कुंटल लकड़ी मिलती है। सफेदे की फसल एक बार लगाने से तीन बार फसल ली जा सकती है। पेड़ों की कटाई नवंबर से फरवरी तक करने पर कल्ले अच्छे निकलते हैं।

यूकेलिप्टस काष्ठ की बिक्री

राज्य वन विभाग के नियमानुसार यूकेलिप्टस प्रजातियों का कटान तथा ढुलान परमिट बिक्री हेतु आवश्यक नहीं है। उचित दर पर वृक्ष प्रजातियों की बिक्री उपयुक्त बिक्री स्रोत से की जा सकती है। जैसे : वन निगम, आरा मशीन, प्लाईवुड/विनीयर उद्योग में अन्य काष्ठ उद्योग। प्लाईवुड/विनीयर उद्योग में मुख्य रूप से यूकेलिप्टस तथा पापलर प्रजातियों का प्रयोग होता है। इस उद्योग में बिक्री हेतु 6–8 वर्ष की तैयार लकड़ी ही प्रयोग की जाती है। यूकेलिप्टस के वृक्ष के 52 इंच के टुकड़े 18–50 इंच मोटाई के विनीयर उद्योग हेतु उपयुक्त होते हैं। यूकेलिप्टस का वर्तमान बाजार मूल्य 550–650 रूपये/कुंटल है। पैकिंग बॉक्स उद्योग में भी यूकेलिप्टस की बिक्री की जा सकती है। क्षेत्र की नजदीकी आरा मशीनों पर किसान वृक्षों की बिक्री कर सकते है। इसके अतिरिक्त वन निगम द्वारा तैयार किये मानकों जैसे मोटाई के आधार पर देय मूल्य से भी कृषक प्रार्थना पत्र देकर वृक्षों की बिक्री कर सकते हैं।

व्यवहारिक तथा वैज्ञानिक महत्व

कृषि वानिकी सम्बन्धी तकनीकी ज्ञान का प्रचार प्रसार कृषि वानिकी के सतत् विकास में सहायक सिद्ध होगा।

यूकेलिप्टस का विकास होने से काष्ठ आधारित उद्योगों में

कच्चे माल की आपूर्ति में वृद्धि होगी।

कृषकों के आर्थिक स्तर में वृद्धि के साथ वृक्ष एवं वन आवरण अर्थात् पर्यावरण का विकास होगा।

राज्य के कृषकों को लाभ

कृषकों हेतु कृषि वानिकी के विकास द्वारा भू उपयोग के नये आयामों का विकास होगा। वृक्ष आधारित उत्पादों में स्व–उपयोग के साथ अतिरिक्त उत्पाद का विक्रय कर आर्थिक स्तर में सुधार होगा। राज्य में प्रचार प्रसार प्रशिक्षण व प्रदर्शनी कार्यक्रमों द्वारा कृषि वानिकी का सतत विकास होगा। वन तथा पर्यावरण के स्तर में वृक्षारोपण के माध्यम से वृद्धि होगी। यूकेलिप्टस रोपण द्वारा कृषक 6–7 वर्षों के बाद ही 1 हेक्टेअर क्षेत्र से ब्लाक पौधारोपण द्वारा 2 × 2 मीटर की दूरी पर प्लाईवुड/वीनियर उद्योगों में विक्रय करके लगभग 40–45 लाख रूपये की राशि अर्जित कर सकता हैं। ग्रामों तथा कृषकों का कृषि वानिकी मॉडलों के रोपण हेतु चुनाव तथा यूकेलिप्टस आधारित विभिन्न कृषि वानिकी मॉडलों का चयनित स्थलों पर स्थापन लाभकारी होगा। प्रचार प्रसार कार्यक्रमों में वितरण हेतु सम्बन्धित हिन्दी साहित्य भी उपयोगी होगा ।

संस्तुतियाँ

क्षेत्र विशेष में कृषकों हेतु कृषि वानिकी तकनीक जैसे प्रजातियों का उचित चयन, वृक्ष कृषि फसल मॉडलों की जानकारी, मृदा परीक्षण, वृक्ष का रख रखाव, विपणन, कटान तथा ढुलान जैसे व्यवहारिक बिंदुओं की उचित जानकारी आवश्यक है, यथा :

१. पूर्वी मैदानी कृषि जलवायु क्षेत्र के जिलों में कृषि वानिकी की वर्तमान स्थिति।

२. प्रदर्शन कृषि वानिकी मॉडलों का विकास

३. प्रशिक्षण तथा प्रदर्शन कार्यक्रमों के माध्यम से कृषकों को कृषि वानिकी अपनाने हेतु कृषि वानिकी तकनीक का प्रचार तथा प्रसार।

चित्र–3 एवं 4 : यूकेलिप्टस कृषि वानिकी पर प्रशिक्षण लेते हुए कृषक

निष्कर्ष

पूर्वी उत्तर प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों में सीमांत कृषकों हेतु कृषि वानिकी का विकास अत्यंत महत्वपूर्ण है। कृषि वानिकी तकनीक का चयनित कृषि जलवायु क्षेत्र में प्रशिक्षण तथा प्रदर्शन कार्यक्रम के माध्यम से यूकेलिप्टस का प्रचार तथा प्रसार क्षेत्र विशेष के कृषकों हेतु अति उपयोगी होगा। प्रत्यक्ष रूप से यह कृषकों के दिन प्रतिदिन के उपयोग में आने वाली वृक्ष आधारित आवश्यकताओं को पूर्ण करने के साथ उनके आर्थिक स्तर में वृद्धि करेगा। वन विभाग के प्रतिनिधियों, जिला प्रशासन तथा ग्राम प्रधानों के माध्यम से प्राप्त परिणामों/अनुशंसा को व्यवहारिक रूप से लागू करने हेतु बैठकों का आयोजन करना चाहिए। राष्ट्र हित में सुनिश्चित इच्छित वृक्ष/वन प्रतिशत को प्राप्त करने में भी यह सहायक सिद्ध होगा ।

अनुभा श्रीवास्तव
वैज्ञानिक–सी

वर्मी कम्पोस्ट (केंचुआ खाद) भूमि के लिये वरदान

वेदपाल सिंह, वैज्ञानिक–सी
वन संवर्धन एवं प्रबन्धन प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

विगत कुछ वर्षों से गोबर खाद या कार्बनिक खाद के स्थान पर रसायनिक खादों का प्रयोग अधिक हो रहा है, जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति कम होने के साथ–साथ भूमि में पाये जाने वाले लाभकारी जीव जन्तु तथा बैक्टीरिया/जीवाणुओं पर विपरीत प्रभाव देखने को मिला है। रासायनिक खादों के उपयोग से शुरूआत में खेती की उपज में वृद्धि तो हुई लेकिन अब लाभ की अपेक्षा नुकसान हो रहा है। आज रासायनिक खादों तथा कीटनाशकों के हानिकारक प्रभावों को महसूस किया जा रहा है और अब विकल्प केंचुआ खाद/वर्मी कम्पोस्ट पर शोध की आवश्यकता पर जोर दिया जा रहा है। रासायनिक खादों के अधिक उपयोग से जमीन जीवाणु विहीन होने के साथ, उत्पादित खाद्य पदार्थ के खाने से अनेक प्रकार की बीमारियाँ जैसे कैंसर, मधुमेह, हृदयघात आदि हो रही हैं इसलिये आज लोग कार्बनिक खाद के उपयोग से उत्पन्न साग–सब्जियों, अनाज व फलों की माँग कर रहे है। रासायनिक खादों के उपयोग से खेती में जल खपत भी ज्यादा होती है जिससे सिंचित क्षेत्रों में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हुई है क्योंकि रासायनिक खादों का 25–30 प्रतिशत भाग ही फसलों द्वारा उपयोग में लाया जाता है, बाकी बचे कैमिकल पानी के साथ बहकर नीचे जमीन में चले जाते हैं तथा भूमिगत जल को प्रदूषित करते हैं जिससे पानी में नाइट्रेट की मात्रा बढ़ जाती है और वह पीने लायक नहीं रह जाता। इन सब कारणों से कम्पोस्ट खाद की आवश्यकता महसूस हो रही है।

पेड़–पौधे तथा पशुओं के अवशिष्ट पदार्थों से कम्पोस्ट तैयार किया जाता है उसी प्रकार खेती से उपलब्ध अवशिष्ट पदार्थों से कम्पोस्ट बनाने हेतु नयी एवं उन्नत विधियाँ खोजी जाने लगी हैं। कम्पोस्टिंग प्रक्रिया में जैविक एवं रासायनिक क्रियाएं साथ–साथ चलती हैं। जैविक क्रिया के अन्तर्गत वायु की उपस्थिति में क्रिया करने वाले जीवाणु तथा अनुपस्थिति में क्रियाशील जीवाणु दोनों ही अपनी प्रक्रिया द्वारा अवशिष्ट पदार्थों को कम्पोस्ट बनाते हैं। इस प्रक्रिया में तापमान घटाने तथा बढ़ाने का ध्यान रखना पड़ता है। उचित नमी, वायु एवं कच्चे पदार्थों के मिश्रण के अनुपात का भी ध्यान रखना पड़ता है।

कम्पोस्ट में विभिन्न प्रकार के रासायनिक तत्व सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं। एक अच्छी कम्पोस्ट खाद में अधिक मात्रा में पोषक तत्व घुलनशील अवस्था में रहते हैं। सूक्ष्म जीवाणुओं को वृद्धि के लिये कार्बन की आवश्यकता होती है और प्रोटीन–संश्लेषण के लिये नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। कम नाइट्रोजन वाले खराब अवशिष्ट पदार्थ (अनुपयोगी) जैसे फसलों का भूसा, सरसों की तुड़ी, गन्ने की पत्तियाँ व खोई, कपास के अवशेष आदि में प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया बहुत धीमी पड़ जाती है और इसके संश्लेषण में काफी समय लगता है।

कम्पोस्ट खाद का एक प्रमुख विकल्प वर्मी कम्पोस्ट है वर्मी कम्पोस्ट के निर्माण में बड़ी महत्वपूर्ण और प्रमुख भूमिका केंचुए की होती है। केंचुए को अंग्रेजी भाषा में वर्म्स कहते हैं। केंचुओं के मल को वर्मी कम्पोस्ट कहा जाता है। इसी प्रकार व्यवस्थित ढंग से सड़ी गोबर की खाद के माध्यम से पचाकर निर्मित की गयी खाद प्रक्रिया को केंचुआ जैव प्रोद्यौगिकी कहते है। जिसमें जैविक खाद तथा केंचुओं का उत्पादन साथ–साथ होता है। वर्मी कम्पोस्ट नाम से यह तकनीक अब धीरे–धीरे बढ़ रही है और अब तो शहरों में भी लोग रसोई घरों के कचरे और अवशेषों जैसे कागज, सब्जी व फलों के अवशेषों को केंचुओं की सहायता से वर्मी कम्पोस्ट में बदल रहे हैं। कुछ लोग इस तकनीक को अपनाकर व्यवसायिक स्तर पर भी लाभ उठा रहे हैं और इस वर्मी कम्पोस्ट या केंचुओं की खाद को रूपये 1000/– प्रति कुन्टल के हिसाब से बेच कर लाभ उठा रहे हैं।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने हेतु आवश्यकताएँ एवं तैयारी : वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन हेतु किसी भी जगह इसकी यूनिट स्थापित की जा सकती है। वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने हेतु छोटी से छोटी व बड़ी से बड़ी उत्पादित इकाई लगायी जा सकती है। इसके लिये किसी भी व्यक्ति द्वारा बहुत थोड़ी जगह या प्लास्टिक के टब या मिट्टी के बड़े बर्तन इत्यादि में वर्मी कम्पोस्ट यूनिट बनायी जा सकती है। इसके अतिरिक्त बजरी, सूखा एवं गीला कचरा वर्मी कम्पोस्ट के केंचुए पानी छिड़कने के लिये झारा तथा ढकने के लिये टाट के कपड़े या जूट की बोरियाँ तथा अवशिष्ट पदार्थ को

उलटने–पलटने के लिये एक लोहे/लकड़ी के पंजे की आवश्यकता होती है। खाद बनाने वाले केंचुए रोशनी से डरते हैं और ये अंधेरे में रहना पसन्द करते हैं। जिससे केंचुओं से खाद आसानी से अलग की जा सकती है। बड़े पैमाने पर वर्मी कम्पोस्ट बनाने हेतु जैविक पदार्थों जैसे फसलों के अवशेषों को थोड़ा सूखाकर अधिक मात्रा में तैयार करना होता है इसमें फसलों के अवशेषों के अतिरिक्त, बाग या पेड़ की पत्तियों, घरेलू कचरा, पशुओं का मल इत्यादि जो प्रतिदिन कचरे के रूप मे मिलता है उसी दिन से उसके सूखने की प्रक्रिया शुरू कर देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त रासायनिक क्रियाओं द्वारा भी इन अवशेषों को निष्पादन किया जा सकता है इसमें उच्च तापीय रासायनिक प्रक्रिया अथवा सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा इन कच्चे पदार्थों का उपचार किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त खाद उत्पादन हेतु स्थान का चयन करने के लिए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कच्चे माल, गोबर आदि को लाने का मार्ग आसान हो, तथा वहाँ पानी नहीं भरता हो, साथ ही धूप एवं वर्षा से बचाव की भी व्यवस्था हो। कच्चे/पक्का फर्श जमीन से 20–25 सेमी0 ऊँचा उठा होना चाहिए। कच्चे फर्श का दीमक एवं चीटी से उपचार किया जाना चाहिए। नीम की खली का उपयोग उपचारित हेतु किया जा सकता है। उचित नमी एवं तापमान बनाने का प्रबन्धन होना चाहिए। पानी व पाइप के प्रबन्धन हेतु पानी की टंकी व पादप वर्मी कम्पोस्ट के उत्पादन हेतु आवश्यक है। पानी की उपलब्धता खाद की इकाई के नजदीक होनी चाहिए।

केंचुआ खाद बनाने की विधि :– केंचुआ खाद बनाने के लिए छायादार स्थान की आवश्यकता होती है ताकी तेज धूप एवं वर्षा से बचाया जा सके। यह स्थान खुली जगह पर भी हो सकता है बशर्ते कड़ी धूप व बरसात से बचाने हेतु झोपड़ी बनाई जा सकती है। झोपड़ी बनाने हेतु बाँस की चटाई का इस्तेमाल किया जा सकता है। जिस अपशिष्ट पदार्थ से अथवा फसलों के अवशेषों से खाद तैयार की जानी हो, उससे काँच पत्थर अथवा पथरीले पदार्थ, धातु के टुकड़े आदि को निकाल देना चाहिए। जमीन के ऊपर क्यारी तैयार कर इसे समतल बना लेना चाहिए, इस समतल जमीन पर 6–7 सेमी0 रेत की पर्त बिछायें, फिर बालू या रेतीली मिट्टी के ऊपर 15 सेमी0 मोटी दोमट मिट्ठी की परत बिछायें। दोमट मिट्ठी न मिलने पर काली मिट्ठी अथवा राख बिछाई जा सकती है। इस परत के ऊपर आसानी से अपधटित होने वाले पदार्थ जैसे नारियल का रेशा, धान की पुआल या गन्ने की पत्तियाँ, ज्वार या मक्का के तने के अवशेष व सब्जियों के डंठल सूखी पत्तियाँ या रसोई घर का कचरा इत्यादि की 6–7 सेमी0 मोटी परत बनायें व इसके ऊपर (2–3) दिन का पुराना 6–8 सेमी0 गोबर डालें। इस गोबर के ऊपर करीब 100 वर्ग फीट की क्यारी पर 3–4 हजार केंचुए फैलाये। केंचुओं के फैलाने के बाद उसके ऊपर गोबर, पत्ती की 12–15 सेमी0 मोटी सतह बनाकर इसको मोटी टाट पट्टी या जूट की बोरियों से ढक देना चाहिए। झारे से प्रतिदिन इस प्रकार पानी लगाना चाहिए कि लगभग 50–60 प्रतिशत नमी बनी रहे। गर्मी के दिनों में, दिन में दो बार तथा सर्दियों में एक बार पानी देने की आवश्यकता होगी, ज्यादा पानी देने से वायु अवरूद्ध हो सकती है इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि क्यारी का तापमान 25–30^{0}C के आस–पास रहना चाहिए। सप्ताह में एक बार क्यारी का कचरा ऊपर नीचे बदलते रहें व गोबर कठोर हो गया हो तो हाथ से तोड़ देना चाहिए। 40–45 दिन बाद पानी छिड़कना बन्द कर दें। लगभग 45 दिन के बाद खाद तैयार हो जाती है इसे निकालें और छोटे–छोटे ढ़ेर बनायें ताकि केंचुए निचली सतह पर ही रहें। इस प्रकार तैयार खाद चाय के पाउडर जैसा दिखता है।

खाद हमेशा हाथ से अलग करे या निकालें, फावड़ा या खुरपी या अन्य नुकीली वस्तुओं का प्रयोग न करें। केंचुए यदि अधिक बढ़ जायें तो आधे केंचुओं से पुनः उसी जगह पर इसी प्रकार खाद बनायें या नई क्यारियाँ बनाकर भी खाद बना सकते हैं। तैयार खाद को 3 मि0मी0 व्यास की जाली से छान लें ताकि केंचुए के कोकून एवं छोटे केंचुयें खाद से अलग हो जायें। और इन छोटे केंचुओं अथवा कोकून को फिर से कम अपघटित कार्बनिक पदार्थ में उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार केंचुआ जैविक खाद (वर्मी कम्पोस्ट) तैयार हो जाता है और इसका प्रयोग खेती में किया जा सकता है। वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए केंचुए की आईसेनिया, यूडिलस पेरिआपिक्स आदि प्रजातियाँ काम में ली जा सकती हैं।

केंचुए की खाद की विशेषतायें व उपयोगिता :– केंचुए की खाद में बदबू नहीं आती तथा मक्खी व मच्छर भी नहीं आते इसमें सूक्ष्म तत्वों के साथ नाइट्रेजन 2.5–3 प्रतिशत, फास्फोरस 1–1.5 प्रतिशत व पोटाश 1.5 से 2 प्रतिशत तक मिलता है इस खाद में केंचुओं का मल (जो कि एक अच्छी गुणवत्ता का ह्यूमस) होता है साथ ही इसमें उपयुक्त हार्मोन्स, ऑक्जीन्स व एन्टीबायोटिक्स व एन्जाइम होते हैं जो पौधों की वृद्धि के लिए सहायक होते हैं इसकी

गुणवत्ता गोबर की खाद की अपेक्षा 6–10 प्रतिशत ज्यादा होती है इसमें विद्युत आवेशित (E.C.) कण होते हैं जो पौधों को मृदा से पोषक तत्व लेने में सहायक होते हैं। यह मिट्टी में हवा का संचार तथा आवागमन बढ़ाने में सहायक होता है जिससे मृदा में जल संधारण क्षमता में वृद्धि होती हैं तथा जल निकासी में सुधार होता है। इस खाद को कम्पोस्ट की अपेक्षा कम समय, लगभग 45 दिन लगते हैं और इसमें पर्याप्त नमी होने के कारण सूक्ष्म जीवाणुओं की गतिविधियाँ मौजूद रहती हैं जिससे पौधों का आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त होने की गति बढ़ती जाती है।

वर्मी कम्पोस्ट खाद का उपयोग फसल वृद्धि के समय, कल्ले फूटने के समय तथा दाना बढ़ने के समय भी किया जाये तो भी उपयोगी होता है। इस खाद के उपयोग से गोबर की खाद डालना बन्द कर देना चाहिए, जिससे खरपतवार कम एवं निराई–गुड़ाई के खर्च में बचत होती है।

इस खाद से भूमि की गुणवत्ता में सुधार आता है तथा फसल स्वस्थ होने से पौधें, रोग एवं कीट प्रतिरोधी होकर विकसित होते हैं तथा खरपतवार भी कम पैदा होते हैं। इससे पत्तियों का रंग खिल जाता है फूलों के आकार, रंग एवं चमक में अप्रत्याशित सुधार होकर पैदावार बढ़ जाती है। औषधीय पौधों की वृद्धि के लिए यह खाद सर्वोत्तम होती है इस खाद का प्रयोग वन वृक्षों के वर्धन हेतु तथा गमलों के पौधों हेतु भी किया जा सकता है। केंचुआ खाद से बंजर भूमि सुधार तथा भूमि की नमी की समस्या का निदान भी होता है। केंचुए हानिकारक जीवाणुओं को खाकर उन्हें लाभदायक जीवाश्म में परिवर्तित कर देते हैं इसके उपयोग से रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होने से किसान की लागत में कमी आती है।

वेदपाल सिंह
वैज्ञानिक–सी

कोक्सीनेल्लिड बीटिलस् की प्रमुख प्रजातियाँ तथा उनका वानिकी में जैविक नियंत्रण में महत्वपूर्ण योगदान

अखिलेश कुमार मिश्रा, शोध छात्र तथा डॉ॰ मौ॰ यूसुफ, वैज्ञानिक–जी
वन कीट विज्ञान शाखा, वन संरक्षण प्रभाग,
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

लेडी बर्ड बीटिल्स, कीट जगत में एक विशेष स्थान रखते हैं। इस समुदाय के सभी सदस्यों को कोलियोप्टेरा गण तथा कोक्सीनेल्लिडी परिवार में वर्गीकृत किया गया है। इस परिवार की पूरे विश्व में लगभग 6 हजार प्रजातियाँ पायी जाती हैं (कपूर, 1955)। भोजन ग्रहण प्रवृत्ति के आधार पर इस परिवार के सदस्यों को उपवर्ग पोलीफेगा में वर्गीकृत किया गया है। भारतवर्ष तथा इसके आस–पास के पड़ोसी देशों में लगभग 550 से भी ज्यादा लेडी बर्ड प्रजातियों के होने का उल्लेख मिलता है। इस परिवार के सदस्यों को 7 प्रमुख उपपरिवारों में : *स्टाइकोलोडिनी, काइलोकोरिनी, स्कीमिनी, कोकसीडयूलिनी, कोकसिनेल्लिनिनी, एपीलेकनिनी* तथा ओर्टेलिनी में विभाजित किया गया है। इस परिवार की लगभग 90 प्रतिशत से ज्यादा प्रजातियाँ, नाशि कीटों के नियंत्रण में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती हैं (मिश्रा एण्ड यूसुफ, 2019)।

लेडी बीटिल, नाशि कीट माहू (एफिड्स) का भक्षण करते हुए

जैविक नियंत्रण में कोक्सीनेल्लिड बीटिल्स का सफल प्रयोग बहुत पहले से किया जा रहा है। भारत में भी विभिन्न कीटालयों में लेडी बर्ड बीटिल्स की प्रमुख प्रजातियों के बहुगुणन, संर्वधन, आदि पर जोर दिया जा रहा है। देश में इनका व्यावसायिक स्तर पर भी विकास किया जा रहा है। राष्ट्रीय कीट संसाधन ब्यूरों, बैंगलौर, कर्नाटक में भी कोक्सीनेल्लिड बीटिल्स की प्रमुख प्रजातियों का व्यवसायिक संर्वधन किया जा रहा है। लेडी बीटिल्स की प्रजातियाँ जैसे *क्रिप्टोलेमस मोंटेरोजेरी, स्कीमनस कोक्सीवोरा, काइलोकोरस निग्रीटा, मीनोकाइलस सेक्मैकुलेटस, ब्रूमोइडिस सूचुरेलिस तथा क्यूरिनस कोरूलियस* आदि को व्यवसायिक तौर पर जैविक नियंत्रण के लिये बहुगुणन एवं संर्वधन किया जा रहा है। जो किसानों एवं शोध के लिए उपलब्ध हैं (पूर्णी एण्ड थंगजेम, 2019)।

कोक्सीनेल्लिड बीटिल्स की व्यापकता होने के कारण, प्रकृति में नाशिकीटों के रोकथाम होती है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। अधिकतर लोग अपनी जीविका के लिए कृषि कार्यो पर आधारित हैं। फसलों में विभिन्न प्रकार के रोगों तथा नाशिकीटों से फसलों की हानि होती है। इस प्रकार उत्पादन को क्षति पहुँचती है। जिससे किसानों की आय घट जाती है। अधिकांश फसलों में रासायनिक कीटनाशकों का अंधाधुंध प्रयोग किया जा रहा है। जिससे मानव समाज ही नहीं अपितु पर्यावरण को भी भारी क्षति पहुँच रही है। जिसका दुष्परिणाम हमें अपने जीवन में देखने को मिल रहा है। लेडी बीटिल्स,नाशि कीटों को खाते हैं तथा फसलों को होने वाली क्षति को कम करते हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश रासायनों के अत्याधिक प्रयोग के कारण दुष्परिणाम स्वरूप इनकी महत्वपूर्ण प्रजातियों का अस्तित्व भी खतरे में है (कपूर, 1972)।

समूह एकताः लेडी बर्ड बीटिलस में समूह एकता पायी जाती है। लेडी बर्ड बीटिल्स अधिकांश रूप में समूह के साथ रहती है। कभी–कभी तो यह लेडी बर्ड बीटिल्स अपने परिवार के अन्य सदस्यों के साथ पायी जाती हैं। सभी एक साथ देखे जा सकते हैं तथा नाशि कीटों को भी समूह में घेरकर बड़े चाव से खाते हैं। ये बीटिल्स समूह में रहते हुए, अपने जाति के सदस्यों के साथ समूह एकता का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। समूह में रहने से लेडी बर्ड

लेडी बर्ड बीटिलस में समूह एकता

बीटिल्स के परभक्षी जैसे अन्य बड़े परभक्षी कीट एवं चिड़ियां आदि से भी अपनी सुरक्षा करते हैं।

रंग बहुरूपताः लेडी बीटिलस में रंग बहुरूपता एक विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण लक्षण प्रदर्शित करती हैं। सिर, वक्ष तथा उदर पर विभिन्न रंगों तथा धारियों से एक विशिष्ट प्रकार की कलाकृति बनाती हैं। अपनी रंगों की बहुरूपकता तथा रोचकता के कारण ही कीट जगत में इन्होंने विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। अपने रंग बहुरूपता के कारण ही वर्गीकरण वैज्ञानिकों ने इनके रंगों के आधार पर जातियों के नाम दिये हैं। जैसे–*कोकसिनेल्ला सेप्टेमपुंकटेटा* जाति के सभी सदस्य पूरे विश्व में लेडी बीटिलस में रंगबहुरूपता पाये जाते है। इस प्रजाति के उदर भाग पर अग्र पंखों पर सात गोलाकार रंग की आकृतियों के कारण ही इसका नाम *कोकसिनेल्ला सेप्टेमपुंकटेटा* रखा गया (अहमद एवं अन्य, 2001)। *मीनोकाइलस सेक्समेकुलेटस*, टेढ़ी–मेढ़ी धारी वाली प्रजाति के नाम से लोगों में प्रचलित है। इसके शरीर के उदर भाग पर प्रत्येक अग्र पंख पर टेढी–मेढ़ी धारियाँ तथा गोल धब्बे पाये जाते हैं।

लेडी बीटिलस में रंगबहुरूपता

वातावरणीय दशाओं, अनुवांशिकी तथा परभक्षी से रक्षा के कारण लेडी बीटिल्स बहुरूपकता को प्रदर्शित करती हैं। एक प्रजाति को अपने रंग बहुरूपकता के कारण ही कीट वैज्ञानिक भी पहचान नहीं कर पाते (पूर्णी, 2002)। परन्तु बहुरूपकता होने पर भी प्रजातियाँ अपनी मूल अवस्था में रहती हैं। वैज्ञानिकों तथा पर्यावरणविद्ों ने रंगों की बहुरूपकता के विभिन्न कारण बताये हैं। जैसे–बदलती वातावरणीय दशाएं, वैश्विक तापमान, जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण इत्यादि हैं। *कोकसिनेल्ला अनडेसिमपुंकटेटा* जोकि ग्यारह गोलाकार धब्बों वाली लेडी बीटिलस हैं। अग्रपंख पर ग्यारह गोलाकार धब्बे पूरे पंखों पर सुसज्जित रहते हैं। *अडेलिया बाइपुंकटेटा* के उदर भाग पर अवस्थित अग्र पंखों पर दो काले धब्बे पाये जाते हैं। इसको सामान्यतः दो धब्बों वाला लेडी बीटिलस कहते है। *हिप्पोडेमिया वैरीगेटा* को भी रंग बिरंगा, चितकबरा लेडी बीटिल कहते हैं। इस प्रजाति में भी रंगों की व्यापक बहुरूपकता देखने को मिलती है। अग्रपंखों पर विभिन्न आकार के परस्पर धब्बों तथा पट्टियों के मिलने से सुंदर आकृतियाँ बन जाती हैं। जो देखने में बहुत ही आकर्षित दिखायी पड़ती हैं। *हिनोसेपिलेकना वाइजिन्टियोंओक्टोपुंकटेटा* जोकि अट्ठाइस काले धब्बों वाला पत्तीभक्षक लेडी बीटिलस है। इसके प्रत्येक अग्रपंख पर चौदह काले धब्बे पाये जाते हैं तथा शरीर सूक्ष्म सफेद रंग की बालों जैसी संरचना से ढका रहता है। इसमें भी धब्बों की संख्या कम या ज्यादा होती है। यह पूरे भारत वर्ष में सोलेनेसी कुल के पोधों पर बहुतायत संख्या में पाये जाते हैं। इस प्रजाति को, वानिकी के क्षेत्र में पॉपलर तथा अन्य पेड़ों की प्रजातियों के नवीन पल्लवों को भक्षण करते हुए भी देखा जा सकता है।

भोजनः लेडी बीटिलस को मुख्यतः तीन प्रमुख भागों में भोजन के आधार पर विभाजित किया गया है। यह परभक्षी, पत्तीभक्षक तथा कवक भक्षी होते हैं। अधिकांश लेडी बीटिल्स परभक्षी प्रवृत्ति के होते हैं (सदरलैंड एण्ड परेला, 2009)। यह अपने भोजन के रूप में माहू, सफेद मक्खी, मिलिबग तथा अन्य छोटे–छोटे मुलायम कीटों को खाते हैं। इसी कारण से इन्हें किसानों का मित्र भी कहा जाता है।

लेडी बीटिलस, नाशि कीट माहू (एफिड्स) का भक्षण करते हुए

एक किवदन्ती के अनुसार किसानों ने एक देवी से वर मांगा था। देवी ने प्रसन्न होकर किसानों को लेडी बीटिल्स को वरदान स्वरूप दिया। लेडी बीटिल्स विभिन्न प्रकार के हानिकारक कीटों का भक्षण करके किसानों की फसलों को होने वाले नुकसान को बचाती हैं। छोटे–छोटे कीट जो पत्तियों, डण्ठलों तथा फूलों का रस चूसकर नुकसान पहुँचाते हैं। जिससे पेड़–पौधों का विकास अवरूद्ध हो जाता है। परन्तु लेडी बीटिल्स छोटे–छोटे कीटों जैसे माहू, सफेद मक्खी, स्केलकीट को बड़े चाव से खाती हैं तथा नाशि कीटों के नियंत्रण में अपना योगदान देती हैं। जैविक नियंत्रण में परभक्षी लेडी बीटिलस का अभिन्न योगदान है। विगत कई वर्षों से परभक्षी कीटों का संर्वधन एवं बहुगुणन करके जैविक नियंत्रण की क्रिया विधि में सम्मिलित किया जा रहा है।

जिससे कृषि के क्षेत्र में ही नहीं अपितु वानिकी, कृषि वानिकी, फूलों की खेती एवं बागवानी में भी सफल प्रयोग लाभकारी सिद्ध हुए हैं।

द्वितीय प्रकार के लेडी बीटिल्स पत्तीभक्षक या तृणभक्षी होते हैं। इनके लार्वे तथा वयस्क पेड़–पौधों की छोटी–छोटी नवीन पल्लवों को खाती हैं। इस समूह के बीटिल्स को उप परिवार ऐपीलेकनिनी में रखा गया है। इस उपपरिवार के सदस्यों में पूरे विश्व में लगभग एक हजार प्रजातियाँ पायी जाती हैं। भारत वर्ष में *हिनोसेपिलेकना वाइजिन्टियोंओक्टोपुंकटेटा, ऐपिलेकना सेप्टीमा* आदि पत्तीभक्षक प्रजातियाँ बहुतायत में मिलती हैं। *हिनोसेपिलेकना* वंश के लेडी बिटिलस को हड्डा बीटिलस भी कहते हैं। कुछ बीटिलस फूलों के पराग कणों तथा बीजों को भी खाते हैं। उदाहरण *ब्यूलिया वंश* के लेडी बीटिल्स (टामजेवेस्का एण्ड सजवार्यन, 2010)।

तृतीय प्रकार के लेडी बीटिल्स कवक भक्षी होते हैं। इन बीटिल्स को एक विशेष समूह हैलजिनी में वर्गीकृत किया गया है। यह पत्तियों, छालों तथा तनों पर विभिन्न प्रकार की प्रजातियों को खाती हैं। इस समूह के सदस्य लार्वे तथा वयस्क, कवकों को बड़े चाव से भक्षण करते हैं। कवकभक्षी प्रजातियों में मुख्यतः *आइलिस सिंक्टा* तथा *आइलिस इण्डिका* प्रमुख हैं। वानिकी क्षेत्र में विभिन्न पेड़ों पर जैसे– शीशम, साल तथा बरगद आदि वृक्षों पर, मुख्य रूप से कवकों पर अपना भक्षण करती हैं। कभी–कभी भोजन के अभाव में परभक्षी लेडी बीटिल्स प्रजाति के कीट जैसे ब्रूमोआइडिस सूचेरेलिस प्रायः माहू तथा फूलों के परागकणों पर भक्षण करती हैं।

लेडीबीटिल्स का जीवन चक्र तथा शारीरिक बनावट
अण्डा, लार्वा, प्यूपा तथा वयस्क

विकासवादी तथा वर्गीकी वैज्ञानिकों को लेडी बीटिल्स के परस्पर भोजन ग्रहण करने की प्रवृत्ति के आधार पर नवीन प्रजातियों का उद्भव होने के प्रमाण मिले हैं।

जीवन चक्र तथा शारीरिक बनावटः लेडी बीटिल्स का जीवन चक्र अण्डा, लार्वा, प्यूपा तथा वयस्क अवस्थाओं में विभाजित होता है। अण्डे गोलाकार तथा परवलीयकार सफेद, भूरे तथा पीले रंगों के होते हैं। अण्डे प्रायः समूह में होते हैं। यह पत्तियों, छालों तथा टहनियों पर मिलते हैं। मादा वयस्क दस से सौ तक अण्डे देती है। अण्डे पास–पास में एक दूसरे से नजदीक तथा आपस में चिपके रहते हैं। लेडी बीटिल्स के लार्वे एक विशिष्ट आकार के प्रायः छोटे घड़ियाल तथा मगर की तरह प्रतीत होते हैं। लार्वे का शरीर खण्डों में बँटा होता है। सिर गोलाकार तथा चौड़ा होता है। शरीर के ऊपरी भागों पर प्रायः विभिन्न प्रकार के काँटों जैसी संरचनाएं पायी जाती हैं। वक्ष तथा उदर के भागों में तीन जोड़ी पैर पाये जाते हैं। शरीर के पूरे हिस्सों पर नुकीले काँटे जैसी सरंचनाएं होती हैं। विभिन्न रंगों के जैसे लाल, पीले तथा काले रंग के धब्बे ऊपरी सतह पर विशेष आकृतियों का सृजन करते हैं। यह प्रत्येक जाति के लेडी बीटिल्स लार्वों का विशिष्ट लक्षण होता है। नुकीले काँटे की संरचना से यह दूसरे सूक्ष्म कीटों जैसे माहू आदि पर हथियार की तरह प्रयोग करते हैं। काँटे की आकृति के कारण ही दूसरे परभक्षी कीटों से स्वयं की रक्षा भी करते हैं।

लार्वे, अण्डों से निकलकर सर्वप्रथम जिन अण्डों से निकलते हैं, खाली अण्डों के खोलों का भक्षण करते हैं। तत्पश्चात् अन्य छोटे–छोटे मुलायम नाशि कीटों का भक्षण करते हैं। कभी–कभी लार्वे दूसरी प्रजातियों के अण्डों का भी भक्षण करते हैं।

लेडी बीटिल्स वयस्क, गोलाकार एवं अण्डाकार के होते हैं। यह विभिन्न रंगों की पट्टियों, धब्बों तथा धारियों आदि से एक विशेष प्रकार की आकृति का सृजन करते हैं। जो देखने में बहुत ही मनमोहक होती है। विभिन्न प्रजातियों में रंगों की बहुरूपता व्यापक रूप से पायी जाती है। लेडी बीटिल्स का आकार 3.0 मिमी0 से 12.0 मिमी0 तक होते हैं। कुछ प्रजातियाँ जो लाल मकड़ी को खाती हैं। एक विशेष प्रकार की लेडी बर्ड बीटिल्स होती हैं। इनका आकार बहुत ही सूक्ष्म होता है। इनके शरीर की माप लगभग 3.0 मिमी0 लम्बाई तथा 2.0 मिमी0 चौड़ाई होती है। यह अधिकतर काले रंग की होती हैं। इनका सिर, वक्ष तथा वाहय् पंखों का ऊपरी भाग सफेद रंग के बालों की संरचना से पूर्ण रूप से

आच्छादित होता है।

रासायनिक प्रतिरक्षाः प्रायः हम जब किसी लेडी बीटिल्स को पकड़ते हैं तो वह एक विशेष प्रकार का पीले रंग का पदार्थ स्रावित करती है। यह रसायन, लेडी बीटिल्स अपने प्रति रक्षा के लिए स्रावित करती है। यह एक रासायनिक एल्केलाइड होता है। इस एल्कोलाइड में हीमोलिम्फ भी युक्त रहता है। इस रासायन में नाइट्रोजन होने की पुष्टि शोधों द्वारा हुई है। चूँकि लार्वे तथा वयस्क में स्पर्श–सूत्र, अधोहनु तथा जंभिका आदि से शत्रुओं को पहचान लेता है। परन्तु अचानक दबाव या आक्रमण से विशेष प्रकार की गन्धयुक्त रासायन को स्रावित करती है। यह एक प्रकार का अनुकरण है जिससे परभक्षी से बीटिल्स स्वयं की रक्षा करती है।

भोजन की विशेष परिस्थितियाँः प्रायः लेडी बीटिल्स अपनी वास्तविक अवस्थाओं में परभक्षी होते हैं। परन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में ये अपने प्यूपा के खोलों को भी खाते हैं। वैज्ञानिकों तथा शोधवेत्ताओं ने इस विशेष परिस्थिति की जाँच की है। शोधों के द्वारा पता चला है कि लार्वे अण्डों को खाते हैं। लार्वे भी अपनी प्रजाति तथा दूसरी प्रजातियों के लेडी बीटिल्स के लार्वो का भक्षण भी करती हैं। वयस्क भी छोटे–छोटे लेडी बीटिल्स की प्रजातियों का भक्षण करती है। शोधों के द्वारा पता चला है कि जब प्यूपा से वयस्क बीटिल्स निकलता है तो यह अपने प्यूपा के खोलों को सर्वप्रथम खाता है। प्यूपों में काइटिन नामक रासायन पाया जाता है। यह एक प्रकार की लम्बी श्रृंखला वाला ग्लूकोज का बहुलक है। प्यूपा में कैल्शियम भी पाया जाता है। इस प्रकार भोजन के अभाव में सर्वप्रथम प्यूपा के खोल का भोजन के रूप में लेडी बीटिल्स के वयस्क ग्रहण करते हैं।

लेडी बीटिल्स

कोकसिनेल्लिड बीटिल्स वर्तमान एवं भविष्यः भूमण्डलीय ऊष्मीकरण (ग्लोबल वार्मिंग), प्रदूषण करने वाले रासायनों का अत्यधिक प्रयोग, रेडियो किरणें, कार्बनडाईऑक्साइड की अधिकता आदि अनेकों कारणों से पूरे विश्व में विध्वंशकारी परिणाम देखने को मिल रहे हैं। जिससे न केवल मानव समाज प्रभावित हो रहा है। बल्कि पृथ्वी पर पाये जाने वाली जैवविविधता पर भी भंयकर संकट आ गया है। लेडी बर्ड बीटिल्स की व्यापकता भी दिनों–दिन घटती जा रही है। अनेक प्रजातियाँ विलुप्ति की कगार पर हैं। रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से नाशि कीटों की संख्या में कमी तो हो जाती है परन्तु इनका बीटिल्स पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जिससे कोकसिनेल्लिड बीटिल्स का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाता है। महत्वपूर्ण प्रजातियाँ जंगलों की अग्नि से भी समाप्त हो जाती हैं। कोकसिनेल्लिड बीटिल्स की संकटग्रस्त प्रजातियाँ भी विलुप्त होती जा रही है।

लेडी बीटिल्स

कृषि ही नहीं अपितु वानिकी के क्षेत्र में भी कोकसिनेल्लिड बीटिल्स का महत्वपूर्ण योगदान है। जंगलों तथा कृषि वानिकी में भी लेडीबीटिल्स नाशि कीटों के नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कोकसिनेल्लिड बीटिल्स की एकीकृत नाशि जीव प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका है। रासायनों के प्रयोग को कम करके प्राकृतिक रूप से नाशि कीटों की जैविक प्रबंधन द्वारा रोकथाम करने से पर्यावरण में संतुलन स्थापित किया जा सकता है। जिससे वर्तमान तथा भविष्य में होने वाली प्राकृतिक आपदाओं को कम करने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं। कोकसिनेल्लिड बीटिल्स की भोजन प्रवृत्ति में बहुरूपता होने के कारण कई क्षेत्रों में इनका प्रयोग किया जा सकता है। शोधों से पता चला है कि वानिकी के क्षेत्र में कोकसिनेल्लिड बीटिल्स की जैव विविधता व्यापक है विभिन्न महत्वपूर्ण प्रजातियाँ जंगलों में नाशि कीटों को नियंत्रण करने में सहायक होती हैं।

प्रकृति में इन लाभदायक कीटों के संरक्षण तथा संख्या वृद्धि के लिए हमें आवश्यक पहल करने की आवश्यकता है। यदि ये परभक्षी कीट हमारे खेतों, बागानों तथा वनों में प्रचुर मात्रा में होगें तो स्वाभाविक रूप से नाशि कीटों का भक्षण कर प्रकृति में संतुलन बनाये रखने में सहायक सिद्ध होगें। तथा वातावरण, रासायनिक कीट–नाशकों के प्रदूषण से मुक्त तथा स्वास्थ्यवर्धक होगा। नदियों में बहता पानी स्वच्छ और निर्मल होगा।

सन्दर्भः

अहमद. एम.ए; अहमद. एम. जे.; अफरोज. एस. एण्ड मिश्रा आर. के. (2001). फस्ट रिर्कोड ऑफ कोकसीनेल्लिड बीटिल्स (कोलियोप्टेराः कोकसीनेल्लिडी) आन पॉपलर *पापुलस डेलटोइडस* फ्रॉम नार्थ इण्डिया. इण्यिन फोरेस्टर. 127(8): 891–897.

कपूर, ए. पी. (1955). कोकसीनेल्लिडी ऑफ नेपाल.रिर्कोड ऑफ इण्डियन म्यूजियम. 53(3 एण्ड 4): 309–338.

कपूर, ए.पी., (1972).द कोकसीनेल्लिडी (कोलियोप्टेरा) ऑफ गोवा. रिकॉर्ड ऑफ जूलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया. 66 (1–4): 309–320.

मिश्रा, ए. के. एण्ड यूसुफ. एम. (2019). नोट्स ओन कोकसीनेल्लिड बीटिल्स (कोलियोप्टेराः कोकसीनेल्लिडी) फ्राम फोरेस्ट इकोसिस्टम ऑफ उत्तराखण्ड, इण्डियन जर्नल ऑफ बाइलोजिकल कंट्रोल. 33(1) :1–6.

पूर्णी. जे. (2002). एन एनोटेटेड चेकलिस्ट ऑफ द कोकसीनेल्लिडी (कोलियोप्टेरा) एक्सक्लुडिंग एपीलेकनिनी आफ इ इण्डियन सब रीजन. ओरियन्टल इन्सेक्ट. 36(1): 307–383.

पूर्णी. जे. एण्ड थंगजेम. आर. (2019). न्यू एडिसन ऑफ इण्यिन फॉना ऑफ कोकसीनेल्लिडी (कोलियोप्टेरा); ओरियन्टल इन्सेक्ट. 1–19.

सदरलैंड, ए. एम. एण्ड परेला, एम.पी. (2009). माइकोफेगी इन कोकसीनेल्लिडीः रिव्यू बाइलोजिकल कंट्रोल. 51(2) 284–293.

टामजेवेस्का, डब्ल्यू., एण्ड सजवार्यन, के. (2010). एपीलेकनिनी (कोलियोप्टेराः कोकसीनेल्लिडी) ए रिविजन ऑफ वर्ल्ड जेनेरा. जर्नल ऑफ इन्सेक्ट साईन्स. 16(1): 1–91.

अखिलेश कुमार मिश्रा
शोध छात्र

इन्सर्टिड परजीव्याभ (encyrtid parasitoids): जैविक नियंत्रण का एक विकल्प

मनेन्द्र कनेरिया, शोध छात्र तथा डॉ॰ सुधीर सिंह, वैज्ञानिक–जी
वन कीट विज्ञान शाखा
वन संरक्षण प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून,

हमारे आस–पास के वातावरण में विभिन्न प्रकार के कीट–पतंगे पाये जाते हैं जिनमें से अधिकतर पेड़–पौधों को बहुत हानि पहुँचाते हैं इनसे पेड़–पौधों को होने वाली हानि कभी–कभी विकराल समस्या बन जाती है। जिससे आर्थिक रूप से भी नुकसान होता है। इस समस्या से अधिक नुकसान न हो इसलिये इनकी रोकथाम के लिये रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है, किन्तु ये रासायनिक पदार्थ पेड़–पौधों से भोजन प्राप्त करने वाले अन्य जतुंओं के लिये भविष्य में अत्यंत प्राणघातक सिद्ध होते हैं अतः इनका उपयोग न करके किसी जैविक नियंत्रण विधि का उपयोग किया जाना उचित होगा। पर्यावरण में बहुत से ऐसे सूक्ष्म कीड़े पाये जाते हैं जिन्हें आसानी से नग्न आँखों द्वारा देखना संभव नहीं होता है परंतु ये सूक्ष्म कीड़े अन्य हानिकारक कीट–पतंगों की बढ़ती हुई आबादी को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। ये सूक्ष्म कीड़े अन्य कीट–पतंगों की अलग–अलग अपरिपक्व अवस्थाओं पर आक्रमण करते हैं। इस प्रकार के सूक्ष्म कीड़ों को वैज्ञानिक भाषा में परजीव्याभ कहा जाता है इनमें से कुछ कीट–पतंगों के अण्डों में विकसित होते हैं तथा उन्हें नष्ट कर देते हैं ऐसे परजीव्याभ हानिकारक कीट–पतंगों की तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या को प्रभावी रूप से नियंत्रित करते हैं यह परजीव्याभ कभी भी पेड़–पौधों को नुकसान नहीं पहुँचाते हैं। इस तरह के परजीव्याभ मुख्यतः ***हाइमेनोप्टेरा*** (*Hymenoptera*) गण के एक अधिकुल ***चेल्सीडॉयडिआ*** (*Chacidoidea*) के ***इन्सर्टिडी*** (*Encyrtidae*) नामक कुल के होते हैं यह ***इन्सर्टिडस*** (encyrtids) परजीव्याभ अन्य गणों के कीट–पतंगों जैसे–***लेपिडोप्टेरा*** (*Lepidoptera*), ***डिप्टेरा*** (*Diptera*), ***हेमिप्टेरा*** (*Hemiptera*), ***आर्थोप्टेरा*** (*Orthoptera*), ***न्यूरोप्टेरा*** (*Neuroptera*) आदि पर अपने जीवन चक्र को पूर्ण करने के लिए निर्भर रहते हैं तथा इनकी जनसंख्या को नियंत्रित करते हैं।

इन्सर्टिडस (encyrtids) आकार में 1.1–3.0 मि.मी. तक होते हैं। पूरे विश्वभर में इनकी 5000 से ज्यादा प्रजातियाँ पाई जाती हैं जिनमें से 750 के लगभग हमारे भारत में मिलती हैं वर्तमान में इन्सर्टिडस की 400 प्रजातियों का उपयोग विभिन्न देशों में जैविक नियंत्रण कार्यक्रमों में किया जा रहा है जिनमें से कुछ प्रजातियाँ प्रभावी एवं महत्वपूर्ण जैविक नियंत्रक सिद्ध हुई हैं। सबसे ज्यादा इन इन्सर्टिडस का उपयोग कॉक्सिडी एवं स्यूडोकॉक्सिडी के नाशिकीटों के लिये किया गया है जिन्हें सामान्य भाषा में ***मिलीबग*** (*Mealybug*) कहा जाता है। सर्वप्रथम ***इन्सर्टिड*** (encyrtid) की एक प्रजाति ***कोपिडोसोमा फ्लोरिडेनम*** (*Copidosoma floridanum*) का उपयोग ***अल्बर्ट कोयबेले*** (*Albert Koebele*) नामक वैज्ञानिक द्वारा ***क्राईसोडिक्सिस चेल्साइटस*** (*Chrysodeixis chalcites*) के जैविक नियंत्रण हेतु किया गया था मिलीबग की कई प्रजातियाँ हैं जो गम्भीर रूप से पेड़–पौधों को क्षति पहुँचाती हैं ऐसी क्षति को रोकने के लिए कुछ इन्सर्टिडस की प्रजाति जैसे–***एनागायरस डेक्टॉयलोपाई*** (*Anagyrus dactylopii*)] ***लेप्टोमेस्टीक्स डेक्टॉयलोपाई*** (*Leptomastix dactylopii*) एवं ***ऐनासियस बाम्बेवेलेई*** (*Aenasius bambawalei*) का उपयोग क्रमशः ***निपीकोकस विरिडिस*** (*Nipaecoccus viridis*) ***प्लेनोकोकस सिट्राई*** (*Planococcus citri*) एवं ***फेनाकोकस सोलेनोप्सिस*** (*Phenacoccus solenopsis*) के नियंत्रण हेतु किया गया है। ***फेनाकोकस सोलेनोप्सिस*** मुख्यतः कपास की फसल को गम्भीर रूप से संक्रमित करती है।

चित्रः 1:
पौधे पर मिलीबग संक्रमण

चित्रः 2:
***एनागायरस* प्रजाति (मादा)**

जैविक नियंत्रण के इसी क्रम में *ऊइन्सर्टस* (*Ooencyrtus*) वंश की भी कुछ प्रजातियों का उपयोग जैविक नियंत्रण कार्यक्रम में किया जाता है। कुछ *ऊइन्सर्टस* प्रजातियाँ जैसे–*ऊइन्सर्टस जॉनसोनी* (*Ooencyrtus johnsoni*), *ऊइन्सर्टस सबमैटिलिकस* (*Ooencyrtus* submetallicus) एवं *ऊइन्सर्टस कुवेनी* (*Ooencyrtus kuvanae*) का उपयोग क्रमशः *मुर्गेशिया हिस्ट्रीओनिका* (*Murgantia histrionica*), *निजारा विरिडुला* (*Nizara viridula*) एवं *लाइमेनट्रिया डिस्पर* (*Lymantria disper*) के जैविक नियंत्रण हेतु किया जाता है। कुछ अन्य प्रकार के हानिकारक कीट जो पेड़–पौधों के पत्तों में गड्ढे बनाकर इन्हें क्षति पहुँचाते हैं इनको सामान्यतः सीलिड (psyllid) कहा जाता है। इन्सर्टिडस की कुछ प्रजातियाँ जैसे–*साइलीफेगस पाइलोसस* (*Psyllaephagus pilosus*) एवं *साइलीफेगस बिलीटियस* (*Psyllaephagus bliteus*) का उपयोग *टिनेरीटाइना यूकेलिप्टाई* (*Ctenarytaina eucalyptii*) *ग्लाइकासपिस ब्रिम्लीकॉम्बेई* (*Glycaspis brimlecombei*) के जैविक नियंत्रण में काफी महत्वपूर्ण होती है।

चित्रः 3:
मिलीबग द्वारा क्षतिग्रस्त पत्ता

चित्रः 4:
टर्मिनेलिया अर्जुना पर सीलिड संक्रमण

कोमपेरीया मरसिटी (*Comperia merceti*) एक अन्य महत्वपूर्ण प्रजाति है जो कि घरों, स्कूलों एवं प्रयोगशालाओं में पाये जाने वाले कॉकरोच के अण्डों को खाती है तथा उनके जैविक नियंत्रण में सहायक होती है। इसी तरह की बहुत सी इन्सर्टिड प्रजातियाँ हमारे पर्यावरण में मौजूद हैं जिन्हें अभी तक खोजा नहीं गया है। इनकी खोज आने वाले निकट भविष्य में कीट–पतंगों के नियंत्रण हेतु मील का पत्थर साबित हो सकती है जो कि हानिकारक रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग से हमारे पर्यावरण को बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

चित्रः 5:
ऊइन्सर्टस **प्रजाति (मादा)**

चित्रः 6:
ऐनासियस **प्रजाति (मादा)**

सन्दर्भ

1. नोइज, जे. एस. एण्ड हयात, एम. 1994. ऑरिएंटल मिलीबग पेरासिटॉयड ऑफ द *एनागायरिनी* (हाइमेनोप्टेराः इन्सटिडी): viii+554 पीपी केब इनटर्नेशनल, ओक्सोन, यू के.

2. हुअंग डी. डब्ल्यू. एण्ड नोइज, जे. एस. 1994. ए रिवीजन ऑफ द इण्डो पेसिफिक स्पीसीज ऑफ *ऊइन्सर्टस* (हाइमेनोप्टेराः इन्सर्टिडी), पेरासिटॉयडस ऑफ द इम्मेच्योर स्टेजेस ऑफ इकॉनॉमिकली इमपोर्टेन्ट स्पीसीज (मेनली हेमिप्टेरा एण्ड लेपिडोप्टेरा). बुलेटिन ऑफ द नेचुरल हिस्टोरी म्यूजियम लन्दन (एंटामोलोजी).

मनेन्द्र कनेरिया
शोध छात्र

पलाश के पेड़ों पर रंगीनी लाख कीट पालन की विधि

डॉ॰ अरविंद कुमार, वैज्ञानिक–ई, वन कीट विज्ञान शाखा
वन संरक्षण प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

भारतवर्ष में रंगीनी लाख की खेती सर्वाधिक क्षेत्र पर की जाती है जिसकी कुल भारतीय लाख उत्पादन में 38 प्रतिशत की हिस्सेदारी है। लाख कीट (*केरिया लैक्का*) नामक कीट पोषक मुलायम टहनियों में अपने चूसने वाले मुख घुसाकर रस चूसता है। यह रस ही इस कीट का भोजन है। कीट के शरीर के ऊपर छिद्रों से तरल पदार्थ निकलता रहता है जो हवा के सम्पर्क में आने पर सूख जाता है और उसके शरीर पर मोटी परत बन जाती है यह परत ही लाख कहलाती है तथा कीट परत के अंदर सुरक्षित रहता है। रंगीनी लाख कीट मुख्यतः पलाश एवं बेर के पेड़ों पर पाया जाता है। रंगीनी लाख, लाख कीट की एक स्ट्रेन है जिसकी वर्ष में दो जीवन चक्र (जुलाई से अक्टूबर एवं अक्टूबर से जुलाई) होता है। रंगीनी लाख की खेती पलाश एवं बेर के अलावा अन्य पोषकों जैसे गलवंग, आकाशमनी, पुतरी, भालिया, वन छोला, सनदन, घोंट, सिरिस, बबूल, गूलर, पाकड़, पुटकल, पोरोहों, पीपल, आदि पर भी की जा सकती हैं। पलाश के 8–10 वर्ष एवं बेर के 6–8 वर्ष पुराने पेड़ों पर रंगीनी लाख की खेती की शुरुआत की जा सकती है। लाख कीटों के मुखांग चूसने वाले होते है अतः उनके लिए मुलायम टहनियाँ अधिक उपयुक्त होती हैं।

वैज्ञानिक विधि द्वारा रंगीनी लाख कीट पालन के लिए विभिन्न क्रियाएँ निम्न लिखित बिन्दुओं में उल्लेखित की गयी हैं : (क) पेड़ों की कटाई – छँटाई (ख) लाख बीज का चयन एवं संचारण (ग) फूंकी उतारना (घ) शत्रु कीटों अथवा फफूंद जनित रोगों से बचाव (ड़) फसल कटाई (ट) खंड प्रणाली ।

(क) पेड़ों की कटाई–छँटाई: लाख कीट को उपयुक्त भोज्य पदार्थ मिल सके इसके लिए पोक पेड़ों की डालियाँ नरम होना आवश्यक है। जिसके लिए पेड़ों की कटाई–छँटाई जरूरी होती है जिससे नयी शाखाएं निकलती है जो नरम तथा लाख कीट के लिए उपयुक्त होती हैं। पलाश एवं बेर पेड़ों की कटाई–छँटाई मार्च से मध्य अप्रैल माह तक कर देना चाहिए। एक इंच से पतली डालियों को तथा टूटी –फूटी पुराने तथा रोगग्रस्त डालियों को जड़ से काट देना चाहिए। कटाई–छँटाई करते रहने से पेड़ों में नयी तथा कोमल डालियाँ निकलती है जो छः माह बाद लाख कीट संचरण के योग्य हो जाती हैं। काट–छाँट कराने से पेड़ों से डालियाँ भी अधिक निकलती है जिससे लाख उत्पादन में वृद्धि होती है। साथ ही रोग ग्रसित डालियों को काटने से पेड़ों को रोग से मुक्ति मिल जाती है। काट–छाँट कराते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए।

पलाश के पेड़ की छटाई

डालियों को तेज धार वाली दावली या लम्बे हाथ की ट्री प्रूनर से ही काटना चाहिए।

डालियों को सावधानी से काटना चाहिए ताकि फटने न पाएँ।

एक इंच से कम मोटी डालियों को मुख्य शाखा के जड़ से काटना चाहिए।

अधिक घने पेड़ों की शाखाओं को काट कर कम कर देना चाहिए।

(ख) लाख बीज का चयन एवं संचारणः– लाख कीट को पुनः नए पौधे में संचारित करने के लिए शिशु एवं अंडा युक्त मादा को लाख बीहन के रूप में प्रयोग किया जाता है। लाख बीहन बीज किसी भी अवस्था में लेते समय ध्यान दें कि वह किसी प्रकार के रोग अथवा कीट से प्रभावित न हो। पलाश अथवा बेर वृक्ष पर लाख बीज का संचरण काट–छाँट के छः माह पश्चात ही किया जाना चाहिए। रंगीनी लाख बीज की छः–छः इंच के टुकड़े करके 60 मेस की प्लास्टिक की

पलाश की डाली पर लाख शिशु कीट

जाली में लगभग 80–100 ग्राम भरकर दोनों छोर पर सुतली से बांधें एवं इसे प्रत्येक डाली के निकलने के स्थान पर बांधे। लाख बीज को जब भी बांधे ऊपर की ओर कसकर बांधा जाए। लाख बीहन आवश्यकता के अनुसार मात्रा ही बांधे अधिक न बांधे, ऐसा करने से लाख बीहन की बरबादी होती है तथा कभी–कभी डलियाँ सूख भी जाती हैं। बीहन बीज लाख की मात्रा पेड़ के आकार पर निर्भर करती है मुख्यतः यह देखा गया है की 20 ग्राम बीहन लाख प्रति मीटर डाली के लिए पर्याप्त होता है। एक सामान्य आकार के पलाश के पेड़ के लिए 1–1.5 किलो ग्राम बीहन की आवश्कता होती है।

(ग) फूंकी उतारना – लाख बीज/बीहन संचारण या लाख लगाने के 21 दिन बाद या यदि 21 दिन पूर्व लाख बीहन से लाख कीट निकलना बंद हो जाए तब फूंकी लाख उतार लें। फूंकी लाख उतारने के लिए बने हुकनुमा औजार का ही प्रयोग करें, ताकि बैठे हुए लाख कीट को किसी प्रकार का नुकसान न हो। बांस में हुक या हसिया बांधकर फूंकी को आसानी से उतारा जा सकता है।

(घ) शत्रु कीटों अथवा फफूंद जनित रोगों से वचावः लाख बीहन संचरण के ठीक एक माह बाद या फूंकी उतारने के एक सप्ताह बाद हानिकारक कीटों का प्रकोप शुरू हो जाता है इस समय प्रथम कीटनाशक दवा का छिड़काव करना चाहिए। इसके लिए डाइक्लोरोवोस दवा का 0.03 प्रतिशत का छिड़काव करने से परभक्षी कीट के प्रकोप से बचाया जा सकता है। काली तितली तथा सफेद तितली से फसल को बचाने के लिए कीटनाशक इथोपेन्प्रोक्स दवा का 0.02 प्रतिशत (20 मिली/10 लीटर) पानी का घोल बनाकर लाख लगी डालियों पर स्प्रेयर मशीन से छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकता पर दवा का छिड़काव समय–समय पर करते रहना चाहिए। लाख फसल पर फफूंद जनित रोग का प्रभाव होने पर फफूंद नाशक बेवस्टीन दवा का 0.01 प्रतिशत का घोल बनाकर लाख लगी डालियों पर स्प्रेयार द्वारा छिड़काव किया जाना चाहिए ।

(ड़) लाख की कटाईः– रंगीनी लाख बीहन जुलाई तथा अक्तूबर में परिपक्व हो जाती है तथा इसी माह में इसकी कटाई की जानी चाहिए जुलाई माह में लाख कीट निर्गमन के एक सप्ताह पूर्व भी लाख बीज काटना चाहिए। परन्तु अक्तूबर महीने जब ठंड रहती है तब लाख बीहन की कटाई परिपक्व होने तथा डालियों पर 2 से 5% लाख कीट का वहिर्गमन होना शुरू हो जाए तब लाख बीहन को काटा जाना चाहिए।

पलाश के पेड़ पर लगी परिपक्व लाख

परिपक्व लाख की पहचानः लाख की कटाई से पूर्व परिपक्वता लाख कोष का 3/4 भाग सुनहरा पीला तथा कोष में दरार पड़ने लगने पर हो जाती है।

- एक पूर्ण लगे परिपक्व लाख बीहन को तेज धार वाली दवाली या सिकेटियर से ही काटें ताकि डाली फटने न पाए।
- कुछ जगह लाख लगे डालियों को न काटें इन्हें स्वतः संचरण के लिए छोड़ा जा सकता है।
- अक्तूबर माह में लाख कोष से कम से कम 2–5 लाख कीट (लार्वा) का निर्गमन शुरू हो जाने पर ही बीहन को काटना चाहिए।

(ट) खंड प्रणालीः लाख या लाख कृषक प्रायः एक ही पेड़ से बीहन लाख और कच्ची लाख (अरी लाख) का उत्पादन करते हैं तथा साल भर लाख कीट को वृक्षों पर छोड़े रहते हैं। कच्ची फसल को अपनी आवश्यकता अनुसार काटकर बेच देते हैं तथा बचे हुए परिपक्व लाख बीहन को लाख बीज के रूप में उपयोग करते हैं इस प्रकार की खेती से वृक्षों की पोषक क्षमता में कमी आती है तथा पेड़ दिन प्रति दिन कमजोर होते जाते हैं साथ ही साथ उत्पादन पर नकारात्मक असर पड़ता है। इन पर दुश्मन कीटों का प्रकोप भी ज्यादा हो जाता है जिसका प्रभाव बीहन लाख की गुणवाता पर पड़ता है। यदि लाख पोषक वृक्षों को खण्ड में विभक्त कर लाख की खेती करें तो इन समस्याओं से निजात पायी जा सकती है। पेड़ों की काट–छाँट के छः माह बाद ही नई डालियाँ आ जाती है अतः इस प्रणाली में कुल पेड़ों को तीन खंडों में बांटकर बीहन लाख उत्पादन सफलता पूर्वक किया जाता है जिसमें एक खण्ड को कच्ची लाख (अरी लाख) उत्पादन के लिए रखा जाता है। ऐसा करने से पेड़ों को आराम मिल जाता है तथा पोषण में कमी नहीं आती है। साथ ही बीच में कच्ची लाख प्राप्त कर लाभ भी कमा सकते हैं। रंगीनी लाख उत्पादन के लिए तीन खंड प्रणाली में की जाने वाली विभिन्न क्रियाएँ निम्न तालिका अनुसार की जानी चाहिए–

तालिका 1 : रंगीनी लाख की खेती में खण्ड प्रणाली (तीन खंड)

वर्ष	माह	खण्ड (क) पलाश (20) बीज खण्ड	खण्ड (ख) अरी खण्ड पलाश. बेर (20)	खण्ड (ग) बीज खण्ड (20) पलाश
प्रथम	अप्रैल	काट – छाँट	....	....
	अक्तूबर	संचारण	....	....
द्वितीय	अप्रैल	....	काट–छाँट	काट–छाँट
	जुलाई	आंशिक कटाई	......	....
	अक्तूबर	फसल की पूर्ण कटाई	संचारण	
तृतीय	अप्रैल	काट–छाँट	अरी लाख की कटाई एवं काट–छाँट	....
	जुलाई	संचारण	....	आंशिक कटाई
.	अक्तूबर	आंशिक कटाई	संचारण	फसल की पूर्ण कटाई
	अप्रैल	....	....	लाख फसल की पूर्ण कटाई
चतुर्थ				एवं काट – छाँट
	जुलाई	आंशिक कटाई	....	....
	अक्तूबर	फसल की पूर्ण कटाई	संचारण	संचारण

तालिका 2: परंपरागत विधि द्वारा लाख की खेती एवं वैज्ञानिक विधि द्वारा लाख की खेती में भिन्नता

क्र.स	परंपरागत विधि	वैज्ञानिक विधि
1	लाख पोषक वृक्षों का काट–छाँट न करना।	सही समय पर उचित तरीके से पोषक वृक्षों की काट–छाँट करना।
2	रोग ग्रस्त डालियों या सूखी डालियों को न हटाना।	रोगग्रस्त, टूटी फूटी तथा पुरानी डालियों को हटाया जाना।
3	कीट संचरण के समय अधिक मात्रा में तथा पत्ते समेत बीहन लाख बांधना।	कीट संचरण के समय उचित मात्रा में पत्ता बीहन लाख को बांधना।
4	बीहन लाख की अधिक मात्रा तथा दो तीन स्थान पर रख देना या बांधना।	बीहन लाख को उचित मात्रा में बण्डल बनाकर प्रत्येक काट–छाँट बिन्दुओं पर बांधना।
5	कीट संचरण के लिए बण्डलों को एक ही स्थान पर बाँधना।	कीट संचारण के लिए बीहन बण्डलों को पेड़ों पर विभिन्न स्थानों पर तथा गर्मी के मौसम में नीचे की ओर बांधना चाहिए तथा ठंडे मौसम में ऊपर में बांधना चाहिए
6	स्वंय संचारण के द्वारा बार–बार उत्पादन लेना।	स्वयं संचारण द्वारा वर्ष में एक बार उत्पादन लेना एक पूरी फसल की कटाई करना।
7	लाख पोषक वृक्षों पर लगातार लाख प्राकृतिक संचारण द्वारा खेती करना ।	पोषक वृक्षों को समयबद्ध आराम देना एवं विधि पूर्वक खेती करना।
8	शत्रु कीटों की जानकारी न होना एवं फसल सुरक्षा हेतु कोई भी उपाय न करना।	शत्रु कीटों से फसल सुरक्षा के लिए कीटनाशक दवा का प्रयोग करना।
9	फूंकी लाख समय पर न उतारना तथा उतार कर खुले स्थान में रखना।	फूंकी लाख समय पर उतारना तथा छिलकर एवं सुखाकर रखना।
10	खुली लाख का संचारण करना।	संचारण के लिए बीज को 60 सेमी. की जाली में भर कर उपयोग करना।
11	खण्ड विधि द्वारा खेती नहीं करना।	खण्ड विधि द्वारा लाख की खेती करना।

उपरोक्त वैज्ञानिक विधि से किसान लाख की खेती कर अधिक लाभ कमा सकते हैं।

डॉ० अरविंद कुमार
वैज्ञानिक–ई

लार्वा परजीव्याभ अपैन्टेलिस प्रजातियों की जैविक नियंत्रण में भूमिका

नेहा रजवार, कनिष्ठ परि. अध्येता, डॉ॰ मौ॰ यूसुफ, वैज्ञानिक–जी तथा डॉ॰ मोहसिन इकराम, वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता
वन कीट विज्ञान शाखा, वन संरक्षण प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

बढ़ती पर्यावरणीय समस्याओं का संबंध वर्तमान में ही नहीं अपितु कई दशकों से रहा है। मानव तथा पर्यावरण से जुड़ी इन समस्याओं का रूप इतना विक्राल एवं जटिल है कि किसी एक निश्चित रूप में परिभाषित करना संभव नहीं है। वर्तमान समय की बात करें तो बढ़ती हानिकारक नाशि कीटों की समस्या एक चुनौती के रूप में कई बार उभरकर सामने आती रही है। वर्तमान समय में मानव की अति व्यस्त जीवन शैली को ध्यान में रखें तो इस व्यस्तता भरी जीवन शैली में बदलाव लाने और इसे अधिक आरामदायक एवं सुविधाजनक बनाने हेतु लगातार हर क्षण कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में नये आविष्कारों तथा तकनीकों का उपयोग भी है। मानव की वस्तुओं की बढ़ती मांग तथा इनकी आपूर्ति हेतु विश्व में कानूनी तथा गैर कानूनी रूप से कई ऐसे कार्य सम्पन्न किये जाते रहे हैं जिससे मांग की आपूर्ति तो सम्भव है परन्तु कहीं न कहीं इसके दुष्परिणाम भी देखने को मिलते हैं।

यदि इन सभी समस्याओं के अतिरिक्त हानिकारक नाशि कीटों की बढ़ती समस्या को देखा जाये तो यह सम्बन्धित क्षेत्रों जैसेः कृषि, वानिकी, नर्सरी आदि के लिए चिन्ता का विषय बना रहा है। कृषि, वानिकी बागवानी आदि क्षेत्रों में बढ़ते कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग ने कई समस्याओं को जन्म दिया है जैसेः पर्यावरणीय प्रदूषण, पारिस्थितिकीय असंतुलन, भोज्य पदार्थों में कीटनाशकों की उपस्थिति आदि। इन हानिकारक कीटों के सुरक्षात्मक एवं सुविधाजनक निस्तारण हेतु, जैविक नियंत्रण का एकीकृत कीट प्रबंधन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण है। इन सभी समस्याओं का निस्तारण पूर्ण रूप से नहीं परन्तु एक सीमा तक जैविक नियंत्रण द्वारा संभव है जो पर्यावरण के लिहाज से सुरक्षित एवं लाभकारी भी है। इन हानिकारक नाशि कीटों के प्रबंधन हेतु हाइमेनोप्टेरस परजीव्याभों का प्रयोग बड़े पैमाने पर किया जाता रहा है। जो पूरे विश्व में जैविक नियंत्रण के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सुरक्षा की दृष्टि से उत्तम एवं अत्यन्त लाभकारी भी है। आज पूरे विश्व में परजीव्याभों जैसे ट्राइकोग्रेमा प्रजाति, अपैन्टेलिस प्रजाति, ब्रेकोन प्रजाति आदि का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जा रहा है।

परजीव्याभ ऐसे कीटों को कहा जाता है, जोकि अपना अपरिपक्व अवस्था का जीवन चक्र किसी विशेष पोषिता कीट (आश्रयदाता कीट) के अन्दर या विकास के विभिन्न अवस्थाओं जैसे अण्डा, लार्वा, प्यूपा आदि में पूर्ण करते हैं।

अन्य परजीव्याभों की तरह हानिकारक नाशि कीटों के नियंत्रण हेतु विकसित की गयी लार्वा परजीव्याभ तकनीक का जैविक नियंत्रण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है। लार्वा परजीव्याभ जैसे अपैन्टेलिस प्रजाति द्वारा कई हानिकारक नाशि कीटों का नियन्त्रण संभव है। लार्वा परजीव्याभ अपैन्टेलिस को हाईमेनोप्टेरा गण के अन्तर्गत आने वाली ब्रेकोनिडी कुल की उप–कुल माइक्रोगेस्ट्रेनी के अन्तर्गत रखा गया है।

लार्वा परजीव्याभ ऐसे परजीव्याभ होते हैं जोकि अपने पोषिता कीट के जीवन चक्र के लार्वा अवस्था पर आक्रमण करते हैं। मुख्यतः लार्वा अवस्था की अंतिम अवस्था या पांचवी इनस्टार अवस्था में पोषिता कीट को प्रभावित करती हैं। ये पोषिता कीट के त्वचा एवं शीशस्थ भाग को छोड़कर आन्तरिक भाग को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। सामान्यतः मादा परजीव्याभ कीट ही नाशि कीट या पोषिता कीट की लार्वा अवस्था को परजीवीकृत करके उसे नष्ट कर देते हैं (हाफमैन और फरोडसम, 1993)।

आज भारत में बढ़ती हानिकारक कीटों की समस्या को देखते हुए हाइमेनोटेरस परजीव्याभों को जैविक नियंत्रण के क्षेत्र में लगातार प्रयोग में लाया जा रहा है। मुख्यतः लेपिडोप्टेरा गण के वे कीट जो हानिकारक कीटों की श्रेणी में आते हैं तथा

चित्रः सागौन निष्पत्रक
(*यूटैक्टोना मैकेरेलिस*)

पॉपलर निष्पत्रक (*क्लोस्टेरा क्यूपरेटा*)

कृषि फसलों, नगदी फसलों, आर्किडस एवं वानिकी के प्रमुख कीटों के रूप में जाने जाते है। इनमें विशेषतः कुछ प्रमुख कीटों जैसे सागौन निष्पत्रक (***यूटैक्टोना मैकेरेलिस तथा हिब्लिया प्यूरा***), महानीम वेब वर्म (*अटैवा फैबरिसियैला*), बांस निष्पत्रक (*क्रिपसिप्टीया कोक्लेसेलिस*), शीशम निष्पत्रक (*प्लीकौप्टेरा रिफलैक्सा*), पॉपलर निष्पत्रक (*क्लोस्टेरा क्यूपरेटा*) आदि प्रमुख हैं। जोकि अत्यन्त हानिकारक हैं तथा वानिकी एवं कृषि–वानिकी क्षेत्र को अत्यधिक नुकसान पहुँचाते हैं। पूर्व में लार्वा परजीव्याभ अपैन्टेलिस की कई प्रजातियों का उपयोग जैविक नियंत्रण में किया जा चुका है जैसे सन् 1883 में यूनाईटेड स्टेटस में *अपैन्टेलिस ग्लोमेरिटस* को सबसे पहले लार्वा परजीव्याभ के रूप में रिकॉर्ड किया गया था, सन् 1938 में *हिब्लिया प्यूरा* के नियंत्रण हेतु निलाम्बूर में बीसन द्वारा *अपैन्टेलिस मालेवोलस* का उपयोग किया गया था तथा *अपैन्टेलिस मालेवोलस* को सागौन निष्पत्रक के जैविक नियंत्रण के लिए केरल के वन क्षेत्र में उपयोग में लाया गया था (बीसन, 1941)। कपास बॉल वर्म का तमिलनाडु में *माइक्रोकिलोनस ब्लैकबर्नी* द्वारा सफल नियंत्रण, *अपैन्टेलिस टेपरोवैनी* द्वारा बबूल निष्पत्रक का नियंत्रण आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं। सागौन निष्पत्रक पर अपैन्टेलिस का रिकॉर्ड विभिन्न प्रजातियों जैसे *अपैन्टेलिस हैबिलियाई, अपैन्टेलिस मैकेरेलिस, अपैन्टेलिस मालेवोलस* तथा *अपैन्टेलिस प्यूरा* (नायर और अन्य 1995)।

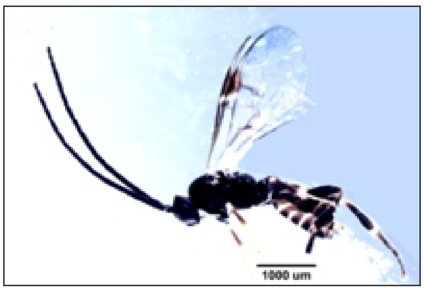

अपैन्टेलिस मैकेरेलिस

अपैन्टेलिस को जैविक नियंत्रण में समय–समय पर हानिकारक कीटों जैसे – सागौन निष्पत्रक, महानीम वेब वर्म, बांस निष्पत्रक, शीशम निष्पत्रक तथा पॉपलर निष्पत्रक पर परजीव्याभ के रूप में वनों तथा कृषि वानिकी क्षेत्रों में पाया गया है।

वर्तमान समय में जैविक नियंत्रण में *अपैन्टेलिस* की भूमिका लाभकारी होने के साथ–साथ लगातार हानिकारक कीटों के नियंत्रण में उपयोगी कीट के रूप में रही है। भारत में भी अपैन्टेलिस प्रजाति की जैविक नियंत्रण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका है। इसका उपयोग प्रमुख नाशि कीटों के जैविक नियंत्रण में किया जा सकता है।

अपैन्टेलिस प्रजाति को लार्वा परजीव्याभ की श्रेणी में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। विभिन्न हानिकारक कीटों जिनमें से विशेषतः *लेपिडोपटेरा* गण के कीटों का जैविक नियंत्रण अपैन्टेलिस द्वारा हो सकता है। इस तकनीक के क्रयान्वयन के द्वारा कीटनाशकों के प्रयोग को एक सीमा तक कम किया जा सकता है।

अतः पूर्व में *अपैन्टेलिस* प्रजाति के जैविक नियंत्रण में सफल प्रयोगों को ध्यान में रखते हुए यह कहना उचित होगा कि इस तकनीक का योजनाबद्ध तरीके से किया उपयोग वानिकी क्षेत्र तथा कृषि–वानिकी क्षेत्रों में उभरती प्रमुख नाशि कीटों की समस्याओं को नियंत्रित करने में लाभकारी सिद्ध होगा तथा जैव विविधता एवं वन बाहुल्य क्षेत्रों को बिना कोई नुकसान पहुँचाये नाशि कीटों से सुरक्षित किया जा सकता है। जैविक नियंत्रण की यह तकनीक पर्यावरण हितैषी एवं नाशि कीटों के नियंत्रण के लिए प्रभावकारी सिद्ध होगी।

अपैन्टेलिस के सागौन पर कुकन

सन्दर्भः

बीसन, सी. एफ.सी. 1941. द इकोलॉजी एण्ड कन्ट्रोल ऑफ फॉरेस्ट इन्सेक्ट ऑफ इण्डिया एण्ड द नेबरिंग कन्ट्रीस. वसन्त प्रेस, देहरादून, 1007 पृष्ठ.

हॉफमैन, एम. पी. एण्ड फरोडसम, ए.सी. 1993. नैच्यूरल ऐनीमीज ऑफ वैजीटेबल इनसैक्ट पेस्टस् कोओपरेटिव एक्सटेंशन. कॉरनैल यूनिवर्सिटी, इथैक, एनवाई. 63 पृष्ठ.

नायर, के.,एस.एस, मोहनदास, के.एण्ड सुधीन्द्र कुमार, वी.वी. 1995. बायोलोजिकल कन्ट्रोल ऑफ द ट्रीक डिफोलियेटर हिब्लिया प्यूरा क्रेमर (*लेपिडोप्टेराः हेबलिएडी*) यूसिंग इन्सेक्ट पैरासिटॉइड प्रोब्लमस एण्ड प्रौस्पैक्ट्स. इन बायोलोजिकल कन्ट्रोल ऑफ सोशियल फॉरेस्ट एण्ड प्लान्टेशन क्राप्स इन्सेक्टस (इडी. अन्नथन क्रिशनन टी. एन) पी.पी. 75–95. ऑक्स फोर्ड एण्ड आइबीएच पब्लिशिंग को. प्राइवेट. लिमिटेड. 225 पृष्ठ.

नेहा रजवार
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

जुलाई–दिसंबर, 2019 के अंतर्गत संस्थान द्वारा आयोजित प्रमुख कार्यक्रम

डेस्टिनेशन उत्तराखंड – 2019

प्रदर्शनी का निरीक्षण करते हुये अतिथिगण

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून ने 18 से 20 जुलाई, 2019 तक "डेस्टिनेशन उत्तराखंड – 2019" की प्रदर्शनी में भाग लिया, जो उत्तराखंड विज्ञान और प्रौद्योगिकी परिषद, उत्तराखंड द्वारा आयोजित की गयी थी। केंद्रीय विद्यालय और देहरादून के अन्य स्कूलों के लगभग 600 छात्र–छात्राओं, विभिन्न संगठनों के अधिकारियों, शोधकर्ताओं और अन्य हितधारकों ने संस्थान के स्टॉल का दौरा किया और संस्थान की वानिकी, औषधीय पौधों, कृषि और अन्य अनुसंधान और विस्तार गतिविधियों को प्रदर्शनों के माध्यम से देखा।

वन महोत्सव, 2019

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून द्वारा 22 जुलाई, 2019 को जवाहर नवोदय विद्यालय, शंकरपुर, सहसपुर, देहरादून के परिसर में वन महोत्सव का आयोजन किया गया जिसके तहत अशोक, रुद्राक्ष, अमलतास, सिल्वर ओक, आँवला, जामुन, कनेर, बांस आदि जैसे बहुउद्देशीय पेड़ों के पौधे लगाए गए। भारतीय वानिकी एवं शिक्षा परिषद के महानिदेशक, डॉ. एस. सी. गैरोला इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। कार्यक्रम में श्री ए.एस. रावत, निदेशक, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून सहित एफआरआई और आईसीएफआरई के अधिकारीगण तथा वैज्ञानिकगण भी उपस्थित थे।

दिनांक 6 अगस्त, 2019 को पंचकुला में वानिकी के माध्यम से यमुना नदी के पुनरुद्धार हेतु हरियाणा राज्य के लिए पहली परामर्श बैठक का आयोजन किया गया। बैठक में विभिन्न हितधारक विभागों, गैर सरकारी संगठनों, किसानों आदि से लगभग 45 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

ओजोन दिवस

संस्थान में दिनांक 16 सितंबर, 2019 को ओजोन दिवस मनाया गया। इस अवसर पर संस्थान के निदेशक श्री अरुण सिंह रावत ने उपस्थित सभा को संबोधित करते हुये ओजोन परत के महत्व को दर्शाया। इस अवसर पर अतिथि वक्ता के रूप में आमंत्रित डॉ. बिक्रम सिंह, निदेशक, मौसम विज्ञान विभाग, पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, मौसम विज्ञान केंद्र, मोहकमपुर, हरिद्वार रोड, देहरादून ने जलवायु परिवर्तन और पूर्वानुमान पर व्याख्यान दिया।

ओजोन दिवस पर संबोधित करते हुय श्री अरुण सिंह रावत एवं डॉ. विक्रम सिंह

ओजोन दिवस पर आयोजित नुक्कड़ नाटक का प्रदर्शन करते हुये वन अनुसंधान संस्थान समविश्वविद्यालय के विद्यार्थीगण

वन अनुसंधान संस्थान ने भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद, देहरादून का प्रतिनिधित्व करते हुए दिनांक 02–13 सितंबर, 2019 तक नोएडा के आईईएमएल में मरुस्थलीकरण से निपटने के लिए संयुक्त राष्ट्र के सीओपी–14 के तहत आयोजित प्रदर्शनी और प्रौद्योगिकी मेले में भाग लिया ।

माननीय केंद्रीय मंत्री श्री प्रकाश जावड़ेकर, पर्यावरण वन एवं जलवायु मंत्रालय तथा सूचना एवं प्रसारण मंत्री, भारत सरकार और श्री इब्राहिम थियाव, कॉम्बैट डेजर्टिफिकेशन हेतु संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन (यूएनसीसीडी) के कार्यकारी सचिव ने प्रदर्शनी और प्रौद्योगिकी मेले में संस्थान के स्टॉल का दौरा किया।

दिनांक 11 सितंबर, 2019 को संस्थान परिसर में स्थित **"वन शहीद स्मारक"** के प्रांगण में राष्ट्रीय वन शहीद दिवस मनाया गया। यह दिवस वनों तथा वन्यजीव की सुरक्षा हेतु अपना बलिदान करने वाले रक्षकों की याद में मनाया जाता है।

दिनांक 09 सितंबर, 2019 को वन अनुसंधान संस्थान के मुख्य भवन में 'हिमालय दिवस' के अवसर पर प्रदर्शनी आयोजित की गई।

हिंदी पखवाड़ा, 2019

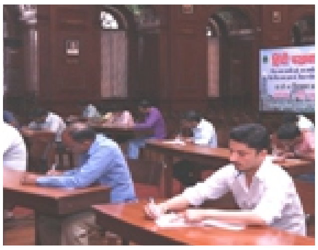

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून के हिंदी अनुभाग द्वारा संस्थान में 02 से 17 सितंबर, 2019 तक हिंदी पखवाड़े का आयोजन किया गया। इस पखवाड़े के दौरान आयोजित हिंदी टंकण, टिप्पण एवं प्रारूप लेखन, निबंध लेखन तथा स्वरचित काव्यपाठ प्रतियोगिताओं में संस्थान के अधिकारियों तथा कर्मचारियों ने हर्षोल्लास के साथ भाग लिया।

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद तथा केन्द्रीय विद्यालय संगठन के बीच हुये समझौते के अंतर्गत ''प्रकृति'' कार्यक्रम के तहत विभिन्न अवसरों पर संस्थान के दौरे पर आए विद्यार्थी एवं शिक्षकगण।